: द्वितीय अध्याय :

अस्तित्ववाद से प्रभावित आलोच्य उपन्यासों में समस्याएँ।

(1) अस्तित्वरक्षा की समस्या।

(2) अकेलेपन की समस्या।

(3) जीवन की निरर्थकता की समस्या।

(4) ईश्वर-निरीश्वर अर्थात् आस्तिक नास्तिक की समस्या।

(5) स्वतंत्रता की समस्या।

(6) अलगाव की समस्या।

(7) अजनबीपन की समस्या।

(8) ऊबकाई की समस्या।

(9) संत्रास की समस्या।

: द्वितीय अध्याय :

अस्तित्ववाद से प्रभावित आलोच्य उपन्यासों में समस्याएँ।

समाज और साहित्य का कितना गहरा संबंध है, यह सिद्ध करने के लिए अनेक विद्वानों ने 'साहित्य समाज का दर्पण है' ऐसा कहा है। उपन्याससम्राट प्रेमचन्दजी ने तो उपन्यास को मानवजीवन का चरित्र माना है, इससे पता चलता है कि समाज और साहित्य का एक दूसरे से अटूट रिश्ता है।

समस्त मानव-सृष्टि और उनका जीवन, उनका सुख-दु:ख, उनकी समस्त समस्याएँ समाज में निहित हैं। साहित्य अगर समाज का दर्पण है तो मानवजीवन की समस्याओं का प्रतिबिंब उसमें निश्चित रूप से पडता है। समस्याएँ चाहे राजनीतिक हो, धार्मिक हों, होती तो हैं जनजीवन से संबंधित। जनजीवन इन समस्याओं से काफी आक्रान्त होता है।

अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों की समस्याओं के बारे में सोचा जाए तो यह बात इस संबंध में महत्त्वपूर्ण है कि अस्तित्ववादी दर्शन दो महायुद्धों की विभीषिका का परिणाम है। प्रत्येक युग की परिस्थितियों का तत्कालीन साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों से जो भी मूल समस्याएँ उठती हैं, उनके समाधान के लिए प्रयत्न भी मिलता है। अस्तित्ववादी विचारधारा भी ऐसा ही एक प्रयत्न है। अस्तित्ववाद उन परंपरागत तर्कसंगत दार्शनिक मतवादों के विरूद्ध एक विद्रोह है जो विचारों तथा इस भौतिक जगत की तर्कों के आधार पर संकल्पना तथा व्याख्या करते हैं तथा मानवीय अधिकारों को नापसंद करते हैं। इसी धारणा के परिणामस्वरूप मानवी जीवन में समस्याओं की निर्मिती होती है।

अस्तित्ववाद में समाज में प्रचलित आडंबरों, अलौकिकता के प्रति मोह, सीमाबद्धता और अबौद्धिकता आदि के प्रति विद्रोह प्रकट हुआ है।

"पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता तथा चिन्तन ने व्यक्ति को नितान्त अकेला, नि:सहाय एवं अजनबी बना दिया है। व्यक्ति नितांत आत्मकेन्द्रित व भौतिकवादी होता जा रहा है। भौतिकता की इस दौड ने व्यक्ति के चैन और सुकून को छीन लिया है।"[1]

आज के भौतिक वातावरण में मनुष्य का भौतिकवाद का गुलाम बनना एक समस्या बन गयी है,

जो भविष्य में मानवजाति पर आनेवाले संकट का इशारा देती है। 'यांत्रिकीकरण' इस प्रमुख समस्या के परिणामस्वरूप मानवजीवन में जो अनेक समस्याएँ आती हैं, उनको किसी विचारधारा ने अपने में प्रमुख स्थान दिया है तो वह अस्तित्ववाद चिंतनधारा ने। "प्रारंभ में इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा गया, लिखा गया। पॉल रूबिचेक की पुस्तक एक्जिस्टैंशियलिज्म समस्या के उभय पक्षों पर प्रकाश डालती है।" [2]

अस्तित्ववाद आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं को स्पर्श करता है। यांत्रिक युग में लोकतांत्रिक, फासिस्ट अथवा समाजवादी किसी भी समाज में सामूहिकता की जो भावना है, वह मनुष्य के व्यक्तित्व विलोप का कारण बनी है। अस्तित्ववादी इसका विरोध करते हैं। इसी विरोध की दशा में मानवीय जीवन की समस्याओं का निर्माण होता है। अस्तित्ववाद ने पारंपारिक समस्याओं से अलग होकर आत्यंतिक गंभीर समस्याओं पर नये सिरे से सोचना शुरू कर दिया है। इन समस्याओं के कारण देश की जो दुर्व्यवस्था बनी है, वह सोचनीय है। डॉ. वाय. बी. धुमाल के अनुसार, "जीवन की मुलभूत समस्याओं को उठाने का जोरदार प्रयत्न अस्तित्ववादी विचारकों ने किया।"[3] अस्तित्ववाद ने जिन मानवीय समस्याओं पर विचार किया, वे निम्नलिखित हैं-

(1) अस्तित्वरक्षा की समस्या।

(2) अकेलेपन की समस्या।

(3) जीवनके निरर्थकता की समस्या।

(4) ईश्वर-निरीश्वर अर्थात् आस्तिक-नास्तिकता की समस्या।

(5) स्वतंत्रता की समस्या।

(6) अलगाव की समस्या।

(7) अजनबीपनकी समस्या।

(8) ऊब एवं ऊबकाई की समस्या।

(9) संत्रास की समस्या।

1. अस्तित्वरक्षा की समस्या :-

कीर्केगार्द के अनुसार, "व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अनुभूति ही अस्तित्व है।"[4] यास्पर्स के मतानुसार, "अपनी मौलिक स्वतंत्रता ही अस्तित्व है।"[5] आज के औद्योगिक युग में हर व्यक्ति आत्मकेन्द्रित

बनकर अपने `स्व` के बारे में अधिक सोचता है। अपने स्वत्व पर उसकी दृष्टि केन्द्रित करने के कारण व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में आ रहा है। इस अस्तित्व की रक्षा के लिए आज हर व्यक्ति संघर्षरत दिखायी देता है। परिवर्तित युग में अपने माँ-बाप से भी अपने अस्तित्व की रक्षा करनेवाली युवा-पीढ़ी का निर्माण होता जा रहा है। व्यक्ति का असली अस्तित्व उसका अपना व्यक्तिगत अस्तित्व है, इससे व्यक्ति की अंतरात्मा विकसित होती है और व्यक्ति को व्यक्तित्व का बोध होने लगता है कि उसका अस्तित्व खतरे से घिर रहा है इसीलिए व्यक्ति को अपने भीतर की ईश्वर-प्रदत्त चेतना की सहायता लेनी पडती है।

आलोच्य उपन्यासों में अस्तित्वरक्षा के रूप में निर्मित समस्या पर इन उपन्यासकारों ने कहाँ तक सफलता के साथ चिंतन किया है, इस पर हम सोचेंगे -

डॉ. देवराज उपाध्याय लिखित 'अजय की डायरी' में इस अस्तित्वरक्षा की समस्या पर चिंतन किया है। अजय अस्तित्वप्रिय पात्र है। यही कारण है कि वह मानवीय अंतरंग कक्षों का, मानचित्र बनाना चाहता है, जिसका माध्यम है, उसकी पुस्तक, 'क्रिएटीव प्रोसेस' (सृजनशील प्रक्रिया)। मानवीय चेतना पर उसका अटूट विश्वास है, जो उसका और उसके देश का अस्तित्व कायम रखेगी। "चेतना ही मनुष्य और उसके इतिहास की गति को दिशा देती है - उस गति को प्रगति या अप्रगति बनाती है। मैं इस चेतना की लौ को निरंतर प्रदीप्त देखना चाहता हूँ, अखंड प्रज्वलित, ताकि मेरा, मेरे देश और मानव का अस्तित्व लगातार आगे बढ़ता रहे, आगे और ऊँचे।"[6]

अजय अपने अस्तित्व को उन लोगों के सामने ज्यादा महत्वपूर्ण समझता है, जो उसके एकदम निकट हों, जिससे उसे अपनापन हो। दीपिका से उसका 'अपनेपन' का संपर्क है, लेकिन दीपिका बुद्धिवादी एवं बहसप्रिय है। दूसरों के सामने वह स्वयं के अस्तित्व को ज्यादा महत्वपूर्ण समझती है। अजय के साथ भी वह बहस में तर्क करने लगती है, तब अजय को अपने अस्तित्व पर सन्देह होने लगता है, परिणामस्वरूप दीपिका के तर्क उसमें खीझ की भावना उत्पन्न करती है। वह सोचता है, "साक्षात् जीवन में विशेषत: उनके संपर्क में जो मेरे निकट है, मुझे अपने विचारों का समर्थन ही मिलना चाहिए।"[7] अजय एकसाथ सभी महापुरूषों के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं रखता क्योंकि सभी महापुरूष एक-दूसरे की बात का खण्डन करके अलग-अलग मत देते रहते है। इससे अजय को अपने जीवन का सिद्धान्त सच्चा लगता है। अप्रत्यक्ष रूप से उसे अपने अस्तित्व पर ही श्रद्धा है, "पूरी श्रद्धा सिर्फ जीवन को ही दी जा सकती है, उसके सूक्ष्म जटिल ताने-बाने, उसके विस्तार और गहराई को।"[8]

अजय अपने व्यक्तित्व विकास के लिए अपने अस्तित्व की चेतना को महत्त्वपूर्ण मानता है, "मेरा लक्ष्य चेतना के उस उच्चतम रूप का विकास का रूप है, जो मेरे व्यक्तित्व की संभावनाओं में निहित है।"[9] अजय अपनी अस्तित्व चेतना को उदासिनता के रूप में देखना नहीं चाहता। "मैं स्वयं अपनी चेतना से, उसकी क्रिएटीव (सृजनात्मक) बैचेनी से, उदासीन नहीं पाता। होना भी नहीं चाहता।"[10]

अजय के मतानुसार मनुष्य के अस्तित्व के दो पहलू हैं, एक आंतरिक और दूसरा भौतिकवादी। इन दोनों अस्तित्वों को वह मनुष्य की जरूरतें समझता है। अजय के लिए यह समस्या है क्योंकि दीपिका उसके 'उस' आंतरिक अस्तित्व की भावना को समझना नहीं चाहती।

अजय मनुष्य और पशु की अस्तित्व भावना में मौलिक अंतर समझता है। वह सोचता है कि मनुष्य की तरह सिर्फ बाहरी अस्तित्व या सिर्फ शारिरीक रूप से जिन्दा रहने के लिए संघर्ष नहीं करता, तो उसका आत्मिक रूप से भी संघर्ष चलता है। शारिरीक अस्तित्व के साथ-साथ वह अपने आंतरिक, आत्मिक (Spritual) अस्तित्व के लिए भी संघर्ष करता है। जीवन में अपने अस्तित्व को सार्थक बनाने की क्षमता सिर्फ उसीमें है। "मनुष्य अस्तित्वरक्षा के लिए एक दूसरे से लडते-झगडते हैं। मनुष्य पशु भी है, लेकिन वह सिर्फ पशु नहीं है। उसका संघर्ष भी सिर्फ अस्तित्व रक्षा के लिए और सिर्फ एक ही तरह का नहीं होता। मनुष्य तरह-तरह के संघर्ष करता है, वह कभी-कभी दूसरों के बदले खुद अपनी घटिया प्रवृत्तियों के विरूद्ध भी संघर्ष करता है। उसमें सिर्फ जीवित रहने की ही नहीं -जिन्दगी को सुन्दर और ऊँचा यानी अर्थपूर्ण बनाने की प्रवृत्ति और कामना भी होती है।"[11] कश्मीर सैर के दौरान अजय गाड़ी में सफर के वक्त हेम का हाथ प्यार से दबाना चाहता है, हेम इस बात को नामंजूर करती है, जिससे अजय के आत्मसम्मान को ठेंस पहुँचती है। वह नाराज हो जाता है। बाद में जब हेम के शरीर का स्पर्श उसे होने लगता है तो वह उसे अनिवार्य परिणाम समझकर दुर्लक्षित करता है। बाद में ऐसी कोई हरकत करके हेम की नजरों में अपने अस्तित्व को गिराना नहीं चाहता। अजय की यह सोच उसके आंतरिक अस्तित्व की भावना के प्रति सचेत होने का प्रमाण कहा जा सकता है।

अजय हेम के प्रति इतना आकर्षित है कि उसे लगने लगता है कि, हेम के अस्तित्व के बिना उसका अस्तित्व है ही नहीं। वह पाता है कि उसके अस्तित्व पर हेम का अस्तित्व पूरी तरह से छा गया है। उससे दूरी उसे असह्य होने लगती है। अपने अस्तित्व की ऐसी निर्भरता के बारे में वह चिंतित होकर सोचने लगता है, "क्यों किसीका अस्तित्व दूसरे के मन और मस्तिष्क में इस तरह चुभ जाता है ? वह गन्ध जैसे चेतना की तहों में

घुसकर उसे नई बेहोशी और नयी जागृति में डूबो रही है, कंपा रही है। मेरा अस्तित्व मानो नई निर्भरता में बंध गया है। लगता है, जैसे अब मेरे अकेले यात्री के लिए कहीं कोई राह और गन्तव्य नहीं मिलेगा। मानो..." [12] अजय अपने अस्तित्व के कारण स्वयं को ऐसा निर्भर यात्री समझने लगा है, जो अकेला और असहाय है। यहाँ हेम का अस्तित्व अजय के अस्तित्व पर हावी हो गया है। अस्तित्ववाद के अनुसार, "प्रेम का संबंध व्यक्ति के प्रामाणिक अहं से होता है और जब कभी वह प्रेम को परिवेशगत प्रयोजनों से जोडना चाहता है तो यह प्रेम विपथगामी होकर व्यक्ति के उस अप्रामाणिक अहं से जुड जाता है, जो सच्ची अस्तित्वानुभूति के लिए सबसे बड़ा बाधक है।"[13] प्रेम से काम लेते समय व्यक्ति अपने अस्तित्व के साथ प्रेमी के अस्तित्व का भी आदर करता है और प्रेमी के लिए उत्तरदायित्व की भावना से संपृक्त हो जाता है। अजय-हेम की स्थिति बिल्कुल इसी ढ़ंग की होती है।

कश्मीर की यात्रा के दौरान अजय को जो हेम का सात्विक और आत्मिक स्वरूप का प्यार मिलता है, वह अजय के अकेलेपन को दूर कर उसके जीवन में आशा की नई किरण ला देता है। उसके जिन्दगी में खुशी प्रवेश करती है, जो उसके अस्तित्व को झकझोर कर रख देती है। "मैं सचमुच ही बहुत प्रसन्न हूँ, अस्तित्व की भीतरी तहों तक विगलित और द्रवित।" [14] हेम के अस्तित्व से अजय इतना प्रभावित हुआ है कि वह अपने और हेम के अस्तित्व के चेतना को एक कर देना चाहता है। उसमें अंतर नहीं रखना चाहता। वह अपनी इस भावना को हेम के सामने प्रकट भी करता है, "मैं चाहता हूँ कि अपने समूचे भीतरी अस्तित्व को तुम्हारे सामने खोलकर रख दूँ- किसी तरीके से तुम्हारी चेतना में संक्रान्त कर दूँ।"[15] अजय अपनी अस्तित्व चेतना में नारीप्रेम को ज्यादा महत्त्व देता है। वह हेम से कहता है - "शुरू में मैं शीला को बहुत प्यार करता था- या शायद करना चाहता था, प्यार मेरे अस्तित्व की बड़ी जरूरत थी और है।"[16]

शीला, अजय और हेम के संबंध को लेकर अजय को अपने दबाव में लाना चाहती है, तब अजय उससे अलग होकर स्वतंत्रता पाना चाहता है, अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है। उसे लगता है, शीला का दबाव उसपर न होकर उसके अस्तित्व पर है, "मैं अलगाव और दूरी चाहता हूँ, मुक्ति का वातावरण, जहाँ मैं आजादी से सांस ले सकूँ, जहाँ मैं यह महसूस कर सकूँ कि, मैं, मेरा अस्तित्व एक अलग ईकाई है, जिसका मैं मालिक हूँ।"[17] यहाँ अजय अपने अस्तित्व की रक्षा की भावना से पीडित नजर आता है।

अजय पर अरस्तू, होमरयुरिपिडीज-पिंडार आदि नाटककार एवं दार्शनिकों के अस्तित्व का

गहरा प्रभाव पडा है। उसे लगता है, उनके अस्तित्व ने उसके अस्तित्व को बांध लिया है, संपृक्त कर लिया है, जिससे वह छुटकारा पाना चाहता है, अपने अस्तित्व को वह इन बंधनों से मुक्त करना चाहता है, "क्यों ऐसी चीजें, ऐसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जो हमें आकृष्ट करते हैं - हमें बरबस अपने अस्तित्व में संपृक्त कर लेते हैं, बांध लेते हैं ? क्यों यह ब्रम्हांड मेरे व्यक्तित्व को आक्रान्त करता है, मैं इनके बंधन में क्यों पड़ता हूँ? जी हां, मुझे मुक्ति चाहिए, बुद्ध का निर्वाण। सभ्यता से मुक्ति? कविता से ? दर्शन से? इतिहास से ? जी मैं आजादी जो चाहता हूँ। पूर्ण स्वातंत्र्य, आत्मवश्यता।"[18]

अमेरिका में अजय अपनी दोस्त बनी क्लारा को अपने दांपत्य जीवन के असंतोष के बारे में कुछ बातें कहता है। क्लारा उसे समझाती है कि शायद अजय और शीला शादी से पहले एक दूसरे को समझने का मौका नहीं पा सके हैं। क्लारा के मतानुसार अजय को इस स्वतंत्रता की बात का अपने देश में प्रचार करना चाहिए। पचास वर्षों के बाद भारतीय जनमानस में जरूर परिवर्तन होगा। अजय अपने देश के लोगों की प्रवृत्ति को समझ चुका है, जो जिन्दा व्यक्तियों की खातिर नहीं करतें। वह कहता है, "ओह ! वह पचास वर्ष बाद का समय हमारे लिए नहीं है, वह समय , हमारे अस्तित्वों की धूल पर अपनी उदारता के फूल चढ़ाएगा।"[19] अजय का यह अफसोस उन महापुरूषों के अस्तित्व के लिए है, जो हमारे देश में जिन्दा रहने तक उसकी अहमीयत नहीं पा सकते।

प्रस्तुत उपन्यास में अजय को अपने देश के उन बुद्धिमान लोगों के अस्तित्व के लिए भी आक्रोश है, जो पी. जैसे भ्रष्टाचारी एवं दंभी लोगों के कारण दबता जा रहा है, अपना विकास नहीं कर पा रहा है। साथ ही समाज की उन अंधी एवं निरर्थक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश है, जो इन अस्तित्वों को उभरने नहीं देती। "एक ओर पुरानी, सडी गली, अंधी रूढ़ियों से बंधी समाज-व्यवस्था और दूसरी ओर पी. जैसे हृदयहीन, शक्तिशोषी महापुरूष- इन दो पाटों के बीच सुधर एवं संवेदनशील व्यक्तित्व के उभरने के लिए कहां जगह है।"[20]

अस्तित्ववाद भौतिकवाद को अतिरेक से घिरे मानव की अशान्ति से उत्पन्न हुआ है। आज के भौतिकवादी वातावरण में मनुष्य अपने अस्तित्व को खो रहा है। अजय भी इस भावना को अस्तित्ववादी ढ़ंग से सोचता है, "विज्ञान की प्रमाणित और प्रतिष्ठित दृष्टि में हमारा जीवन एक निरर्थक संयोगमात्र है। मनुष्य की प्रखर चेतना अपनी इस तुच्छ क्षुद्रता से कैसे समझौता करें ? क्यों वह चेतना कभी-कभी किसी कुछ के अस्तित्व में इतनी

शहरी रूचि लेने लगती है ?"[21] दीपिका के अस्तित्ववाद के बारे में विचार भी इस उपन्यास में लक्षणीय है। वह निराशावाद से पीढ़ित होने के कारण मनुष्य के जिन्दा रहने को, उसके अस्तित्व को नकारात्मक ढ़ंग से सोचती है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में अजय और दीपिका मानवीय अस्तित्व के बारे में अपने-अपने ढ़ंग से सोचते हैं।

अज्ञेय के 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास में भी अस्तित्वरक्षा की समस्या उभरकर सामने आती है। 'अपने-अपने अजनबी' की कथा के लिए अज्ञेयजी ने विदेशी घटना को चुना है। कथा की बुनावट के लिए उन्होंने जो पात्र चुने हैं वे भी विदेशी ही हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दो प्रमुख स्त्री-पात्र हैं, सेल्मा और योकें। दोनों बर्फ की परत के नीचे ढ़की एक मकान में अटक गयी हैं। अज्ञेयजी ने इन दो पात्रों के माध्यम से मनुष्य की अस्तित्व के प्रति सचेत रहने की प्रवृत्ति पर जोर दिया है। अस्तित्व रक्षा का यह संघर्ष किन मानसिक प्रवृत्तियों से गुजरता है, यह स्पष्ट किया है।

सेल्मा और योके दोनों को यह मालूम है कि जब तक वह बर्फ पिघलेगी नहीं, तब तक वे दोनों उस घर से निकल नहीं सकेंगी। दोनों पात्रों ने इस उपन्यास में 'मृत्यु से साक्षात्कार' का अनुभव अपने जीवन में दो बार किया है। सेल्मा ने जब पहली बार मृत्यु का अनुभव किया तब वह एक स्वस्थ युवती थी। जीने की अदम्य लालसा उसमें थी। बाढ़ में घिरे लोगों की सहायता करने की बजाय, उनको मुसीबत से बचाने की बजाय स्वार्थी स्वभाव से लोगों को, दोस्तों को लूटकर पैसा कमाती है। अस्तित्व के लिए उसके यह प्रयत्न उसकी स्वार्थपरकता को उजागर करते हैं। "यह बाढ़ उतरेगी ही, तब यह टूटा पूल शायद एक अतिरिक्त आकर्षण पा लेगा, सैलानी पुल पर हमेशा आते रहें, टूटे हुए पूल पर और भी अधिक आयेंगे, क्योंकि अब तो वह एक कौतुक की चीज हो जाएगा, और उसका चायघर का कारोबार और भी चमक उठेगा।"[22]

सेल्मा के यह विचार उसके स्वार्थलोलुपता का दर्शन कराते हैं। दूसरी बार जब इसी सेल्मा को मृत्यु के दर्शन होते है तब उसे परिस्थिति के सामने झुकना पड़ता है। अस्तित्व के प्रति उसका संघर्ष शिथिल हो जाता है। "छुट्टी तो शायद मेरी भी इतनी नहीं है, -पर"[23] सेल्मा का यह रहस्यात्मक विधान है, उसमें उसने छुट्टी इस शब्द का प्रयोग अपने अस्तित्व के लिए किया है, जो थोडे दिनों का इस संसार में मेहमान है। वह कैन्सर से पीडित है, जिसकी मृत्यु थोडे ही दिनों में अटल है। यहाँ सेल्मा की अस्तित्व रक्षा की आकांक्षा प्रबल बन उठी है।

उपन्यास का द्वितीय पात्र है-योके। उसने भी अपने जीवन में मृत्यु को टालने के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए संघर्ष किया है। पहली बार वह सफल हुआ है। दूसरी बार उसे भी परिस्थिती के सामने मजबूर होना पड़ा है। पहली बार योके ने मृत्यु से साक्षात्कार सेल्मा के साथ किया है, जब वह बर्फ के कठघरे में अटक गयी है। मृत्यु से उसे डर है और यहीं उसके अस्तित्व के प्रति सचेत होने का प्रमाण है। यही कारण है कि मरणासन्न "सेल्मा के चेहरे पर अचानक कभी-कभी एक भाव दिखता है जो मानो इस लोक का नहीं है, और जिसे देखकर मैं बेचेन हो उठती हूँ और मेरा मन हो उठता है कि, कुछ तोड-फोड कर बैठूँ।"[24] इस प्रकार योके में हिंसा की ललक पैदा होती है, जो उसके अस्तित्व को बनाये रखने के संघर्ष की आहट कहा जा सकता है।

क्रिसमस के दिन उस कठघरे में योके के सामने संत निकोलस की बजाय शैतान की कल्पना उभरती है। इससे योके का मृत्यु के प्रति डर बढ़ता है। मृत्यु से डरना इसका मतलब है, जीवन के एवं अस्तित्व के प्रति आकर्षण। ये दोनों पात्र दूसरी बार मृत्यु के सामने झुकते हैं। उनका अस्तित्व के लिए संघर्ष शिथिल हो जाता है।

उपन्यास का एक अन्य पात्र फोटोग्राफर है। वह बाढ़ के संकट में स्वयं को बचाये रखने का प्रयत्न करता है। उसका फोटोग्राफी का धंधा बाढ़ के संकट में है। उसके पास पीने का पानी तक नहीं बचा है। जिन्दा रहने के लिए वह बाढ़ का पानी पीता रहता है, लेकिन ऐसी अभावग्रस्त, भूखमरी एवं बेकार जिन्दगी से तंग आकर बाढ़ के पानी में कूदकर आत्महत्या कर लेता है। जबतक उसमें जिजिविषा थी, अस्तित्व के लिए संघर्ष करता रहा। आत्महत्या के माध्यम से जिन्दगी से उसने पलायन किया, उसका कारण परिस्थिती ही थी। परिस्थिती के सामने उसका संघर्ष शिथिल हो गया। यहाँ फोटोग्राफर की आत्महत्या उसके अस्तित्व का अंत है, जो अस्तित्व बनाये रखने की लडाई में हार गया है।

चौथा पात्र यान जो सेल्मा का मंगेतर है, उसका इस संकट में अस्तित्व का संघर्ष जारी ही रहा है। बाढ़ के आर्वत में घिरा यान जिन्दा रहने के लिए संघर्ष करता है। आत्महत्या करने से पहले फोटोग्राफर ने ग्लानि में आकर अपनी दूकार जलायी थी, उस दूकार की गर्म राख पर यान कुछ पकाकर खाता है। सेल्मा यह दृश्य देखती है। यान का अस्तित्वरक्षा का संघर्ष यहाँ दिखायी देता है।

बाढ़ की भयावह स्थिति में सेल्मा की स्वार्थांधता को देखकर यान उससे घृणा करने लगता है। सेल्मा को भी अपने घृणित बर्ताव से आत्मग्लानि होती है। तब यान सेल्मा को स्वीकार कर लेता है। उसके साथ

गृहस्थी बसाना चाहता है, उसका और सेल्मा का भविष्य में अस्तित्व बनाना चाहता है। बाढ़ की भयावह कचोट से दोनों निकलने का प्रयत्न करते हैं - "फिर वह मानों पूरे एकाग्र मन से हाथ हिलाकर नाववालों के इशारों का जवाब देने लगा।"[25] इसका मतलब है यान को जीवन के प्रति आकर्षण होने लगा जबकि वही यान बाढ़ की भयंकारीता में खुद के बचने की उम्मीद कम रखता था। सेल्मा से वह कहता है , "लेकिन अगर सचमुच वह बाढ़ ऐसी ही इतने दिनों तक रही कि, मैं भूखा मर जाऊँ, तो तुम बचकर कहाँ जाओगी।"[26] यान को सेल्मा के प्यार ने अपने अस्तित्व के प्रति चेतित बनाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, "उपन्यास का प्रत्येक प्रमुख पात्र अस्तित्व की रक्षा के लिये संघर्ष कर रहा है, चाहे मरने के लिए तैयार 'सेल्मा' हो, आवर्त में घिरा 'यान' हो अथवा पेशिच से तड़पता फोटोग्राफर हो।"[27] योके भी तो बंद कठघरे में मृत्यु की गंध से त्रस्त होकर भी स्वयं को बचाने के लिए संघर्ष करती है। कभी-कभी उसे मरणासन्न सेल्मा को जान से मार डालने की इच्छा होती है, अपनी इस स्थिति के लिए कारण ईश्वर को मानकर उसके प्रति आक्रोश करती है।

अन्त में सैनिकों के बलात्कार से पीडित योके वेश्या के रूप में पहचानी जाती है। इस स्थिति में वह अपना जीवन समाप्त करने की बातें सोचती है। वह जिन्दगी की अंतिम सांस किसी अच्छे आदमी की गोद में छोडना चाहती है। उसका दावा है कि इसी बात में उसका मरना सार्थक बन जाएगा और मृत्यु के पश्चात् उसका अस्तित्व बना रहेगा। जगन्नाथन को वह अच्छे आदमी के रूप में स्वेच्छा से चुनती है और कहती है, "मैंने चुन लिया। मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया।"[28] उसके बाहों में दम तोडकर अपने अस्तित्व को साथ बनाया।

'अपने-अपने अजनबी' में अज्ञेयजी ने जो पात्र चुने हैं वे विदेशी हैं, लेखक स्वयं भारतीय है। विदेशी पात्रों की जीवनविषयक धारणाएँ जरूर विदेशी होती हैं परंतु लेखक भारतीय होने के नाते योके का जगन्नाथन् की गोद में अंतिम सांस छोडने की चाह भारतीय नारी संस्कृति के अनुकूल लगती है। यहाँ के पात्र मृत्यु से संघर्ष करके अस्तित्वरक्षा का प्रयत्न करते हैं।

'लाल टीन की छत' उपन्यास में निर्मलजी ने अपने अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के अनुसार मृत्यु और अस्तित्वबोध इसपर सोचा है। निर्मलजी ने इसमें काया के घर की मालकिन, जोसुआ, उसके घर की कुतिया गिन्नी आदि को आधार बनाकर मृत्यु से संबंधित अस्तित्व के बारे में सोचा है। इन दोनों की मृत्यु को काया अपनी

आँखों से देखती है। इन बातों से उसके विचारों में परिवर्तन होता है। उसका परिचय निर्मलजीने प्रस्तुत उपन्यास में बडी सूक्ष्मतासे किया है।

काया जैसी भोली और नादान लड़की को मृत्यु का अस्तित्व से क्या संबंध है? पता नहीं। वह एक ऐसी लडकी है, जो बचपन को छोडकर जवानी में कदम रखनेवाली है। ऐसी बातें समझने लायक उसकी अभी उम्र भी नहीं है। काया का घर उस शहर में है जो जंगल और पहाडियों के बीच है। जहाँ पर अकेलेपन का ही साम्राज्य है। काया की बुआ उस शहर को मरा हुआ शहर कहती है। जहाँ कोई चहल-पहल नहीं, चेतना नहीं। काया इस बात को नहीं समझती। 'मृत्यु' यह बात उसके समझ के बाहर है। कुतिया गिन्नी की मौत उसने देखी थी, तबसे वह मृत्यु को कोई बुलावा मानती है, क्योंकि लामा ने गिन्नी को बुलाया था और गिन्नी उसकी तरफ जाते-जाते पटरी पर रेल के नीचे कुचल गयी थी।

निर्मलजी ने अपने अस्तित्ववादी दर्शन में मृत्यु और अस्तित्व का संबंध बताकर मृत्यु उस जीवन को कहा है, जिसमें 'किसी का न होना', 'किसी का चले जाना', 'किसी का अभाव' है। उन्होंने यह विचार 'छोटे', इस पात्र के माध्यम से स्पष्ट किये हैं। "जिस उम्र में वह थे, वहाँ किसी का अभाव, किसीका चले जाना, किसी का न होना, मृत्यु से कम नहीं था।"[29] निर्मलजी के अनुसार मृत्यु और उसके बाद का मनुष्य का अस्तित्व उस मनुष्य की स्मृतियों के साथ संबंध रखता है। अस्तित्ववादियों के अनुसार, "मौत हम से हमारे प्रिय को छीन सकती है, किन्तु उसके प्रति हमारी चेतनागत वफादारी नहीं मिटा सकती। मृत्यु से वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएँ 'बुझ' जाती है, खत्म नहीं हो जातीं।"[30] वे आगे कहते हैं कि, "मरने के बाद भी हम अपने पीछे कुछ ऐसे मूल्य और सूत्र छोड जाते हैं जिन्हें दूसरे बदल लेते हैं।"[31] लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में बीरू की माँ अर्थात् काया की चाची मर गयी थी। जब तक जिन्दा थी, वह चाचा के लिए अपना अस्तित्व उतना प्रभावी बना नहीं सकी, जिसके स्मृति के सहारे चाचा अपने अकेलेपन को दूर कर सके। "शायद कुछ लोग ऐसे होते हैं जो मरने के बाद अपना अभाव भी नहीं छोडते, अपनी देह के साथ अपनी स्मृति भी ले जाते हैं।"[32] मतलब, व्यक्ति जब तक जिन्दा है और अपनी जिन्दगी में अगर अपना व्यक्तित्व समाज के लिए प्रभावी बना सके, तो उसके मृत्यु के बाद भी उसके 'उस' व्यक्तित्व की स्मृतियाँ उसका अस्तित्व बन जाती है, लेकिन काया की चाची के लिए यह बात बिल्कुल विपरित थी।

काया को अपने संपर्क में आये लोगों में एक स्वार्थी भाव का पुट नजर आया था। इसीलिए तब वह सोच में पड जाती है, जब बीरू उसे गिरजेघर की दीवार पर टँगी यीसू की मूर्ति दिखाकर बताता है कि वे सभी के लिए मरे थे। "पता नहीं , कैसा वह आदमी रहा होगा, जो सबके लिए मरा था, सबका दु:ख भोगा था।"[33] इस प्रसंग में निर्मलजीका यह भी सांकेतिक अर्थ हो सकता है कि, यीसू ने सभी मनुष्यजाति का दु:ख भोगकर, सूली पर चढ़कर हँसते-हँसते मृत्यु को गले लगाकर, समाज के सामने अपनी स्मृतियों के द्वारा ऐसा आदर्श रखा, जिससे वे मृत्यु के बाद भी अपना अस्तित्व छोड़कर गये।

यहाँ निर्मलजी ने मृत्यु के रहस्य में अस्तित्व के सुरक्षा की आहट छिपी हुअी है, ऐसा स्पष्ट किया है। अज्ञेयजीने 'अपने-अपने अजनबी' में मृत्यु से संघर्ष दिखाकर पात्रों की अस्तित्वसुरक्षा की लड़ाई को प्रस्तुत किया है, परन्तु 'लाल टीन की छत' में केवल इस रहस्य को समझाने में अस्तित्व सुरक्षा की समस्या की ओर संकेत किया है। 'निर्माण होनेवाली हर चीज का अंत होता ही है', इस तथ्य को सामने रखकर एक भोली-भाली लड़की के मृत्युविषयक चिंतन को प्रस्तुत करके अस्तित्वसुरक्षा के संघर्ष की समस्या को प्रस्तुत किया है। 'अजय की डायरी' का अजय प्यार को अपने अस्तित्व की जरूरत मानकर उसके लिए अंत तक संघर्षरत है। आलोच्य उपन्यासों के सभी पात्र किसी न किसी रूप में अस्तित्वरक्षा की भावना से पीडित नजर आते हैं।

निष्कर्ष :-

अस्तित्वरक्षा की समस्या में 'अजय की डायरी', 'अपने-अपने अजनबी', 'लाल टीन की छत' उपन्यासों के सभी पात्र अलग-अलग परिवेश से संबंधित होकर भी अपने अस्तित्वरक्षा के प्रति प्रतिबद्ध लगते हैं। 'अजय की डायरी' का परिवेश कश्मीर और अमरीका है। 'अपने-अपने अजनबी' का परिवेश पौरात्य देश और पाश्चात्य देश का है। 'लाल टीन की छत' का परिवेश पहाडी और यातायात के साधनों से दूर बसा हुआ है। इन अलग-अलग परिवेशों में, अलग-अलग वातावरण में पले पात्र अपनी दृष्टियों से अस्तित्व की रक्षा के लिए कटिबद्ध है।

2. अकेलेनपन की समस्या :-

आलोच्य उपन्यासों में लेखकों ने अस्तित्ववाद की 'अकेलेपन की समस्या' पर भी प्रकाश डाला है। "एकांतवास का एक बहुत बड़ा सूत्र है -सचाइयों को उपलब्ध होने का। एकान्त का एक दूसरा अर्थ और है,

एकांत में रहना यह पहला अर्थ और दूसरा अर्थ है- समूह के साथ रहते हुए भी अकेलेपन का अनुभव करना।"[34] इसका मतलब है, इस समस्या से पीडित मनुष्य व्यष्टिगत एवं समिष्टिगत दोनों रूपों में स्वयं को कटा-कटा सा महसूस करने लगता है। "एकान्त---- जहाँ मनुष्य को कोई देखनेवाला नहीं होता, सुननेवाला नहीं, होता ---जहाँ मनुष्य का स्वयं का ही अस्तित्व होता है।"[35]

आलोच्य उपन्यासों में से `अजय की डायरी` उपन्यास का नायम 'अजय' इस समस्या से पीडित है। अजय के दांपत्य जीवन में वह और उसके पत्नी में वैचारिक अलगाव होने के कारण अजय अपने ही घर में अकेलापन महसूस करता है। जो बातें अजय को पसंद होती है, शीला को उसमें खास दिलचस्पी नहीं है। दोनों में यह तनाव, इसके कारण वे बातचीत भी एक दूसरे से ज्यादा नहीं करते। "चूँकि उसे दूसरी बातों में दिलचस्पी कम है, इसीलिए मेरी उससे विशेष बातचीत ही नहीं होती। इसका परिणाम यह है कि, मैं घर के भीतर एक खास तरह का अकेलापन महसूस करता हूँ।"[36] अजय की पत्नी शीला भी अपने वास्तव्य के माहौल में भी अकेलापन महसूस करती है, क्योंकि वह माहौल उसे पसंद नहीं है। "शीला भी अकेलेपन का अनुभव करती है, बी. नगर में आने पर उसकी यह शिकायत और भी बढ़ गई है।"[37]

अजय की दूसरी दोस्त दीपिका बुद्धीजीवी वर्ग का प्रतिनिधीत्व करती है। अजय को लगता है, दीपिका में उस 'सहवेदन' शक्ति की कमी है, जो उसे दूसरे मनुष्यों को समझने के योग्य बनाये। दीपिका के अस्तित्ववादियों के बारे में विचार यहाँ स्पष्ट होते हैं, "संवेदनशील व्यक्ति को दुनिया में अकेले रहना पडता है, एकदम अकेला, जैसा कि, अस्तित्ववादी कहते हैं ..."[38] अपने इन बुद्धीजीवी विचारों को प्रधानता देनेवाली दीपिका अंत तक स्वयं को अकेला महसूस करती है, "मेरा क्या, मैं तो अकेले रहने के लिए बनी हूँ।"[39] संवेदनशील व्यक्ति की अकेलेपन की पीडा को यहाँ उभारा है।

अजय नास्तिक है, लेकिन अपने बुद्धीजीवी विचारों से निकले शंकाओं का समाधान न पाकर वह और भी असहायता महसूस करने लगता है। यही असहायता उसके अकेलेपन को और भी बढ़ावा देती है, "न जाने क्यूँ शुरू से ही मुझे अकेलेपन का एहसास रहा है। जितनी आसानी से मुझमें अकेलेपन की अनुभूति जग जाती है, उतना ही मैं उससे घबराता भी हूँ। जिन दिनों ईश्वर आदि में मेरा विश्वास विघटित हो रहा था, उन दिनों यह भावना और भी तेजी से उमडती थी। चारों ओर की दुनिया में अपने शंका-संदेहों का समाधान न पाकर मेरी बुद्धि

असहाय अकेलेपन से छटपटाती।"[40] अजय का ईश्वर के संबंध में दृष्टिकोण यहाँ पर आस्तिक अस्तित्ववाद के विचारों से मेल खाता है।

अजय और शीला में वैचारिक अलगाव इतना बढ़ गया था कि, उसके प्रति शीला का कृत्रिम लगाव भी अजय का अकेलापन दूर नहीं कर पाता था। "जब किसी व्यक्ति को दूसरों के जीवन से सार्थकता या पूर्णता की उपलब्धि नहीं प्राप्त होती, तो यह अकेलापन, भय या संत्रास में उभरता है।"[41] अजय और शीला के बारे में यही बात हो गयी थी।

अमरीका जाने के बाद वहाँ के भौतिकता से भरे, उसकी दृष्टि में अर्थहीन जीवन में अजय को हेम की बार-बार याद आती है, जिसने उसकी आंतरिक तडप, बेचैनी को समझा था, जिसका अजय से आत्मिक प्यार था। उसकी स्मृतियाँ अजय को वहाँ पर और भी अकेला कर देती हैं। "आज शाम डाइनिङ् . हॉल से लौटकर बहुत अकेलापन लग रहा था। इतने चेहरों के बीच कहीं वैसी छवि की झलक नहीं मिलती।"[42]

इस प्रकार हम देखते हैं कि, उपन्यास के प्रमुख पात्र कभी भौतिकवाद से अकेले बन गये हैं तो कभी अहं एवं स्वतंत्रता की भावना के अतिरेक से। अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए वे छटपटाते हैं। प्रयत्न भी करते हैं। इस अकेलेपन से कभी वे भयभीत हैं, कभी संत्रस्त हैं, कभी समाज से अलग हो गये हैं तो कभी कुण्ठित हो गये हैं।

"अपने-अपने अजनबी" में अज्ञेयजी ने अस्तित्ववाद की इस 'अकेलेपन' की समस्या पर भी विचार किया है। मनुष्य समाजप्रिय प्राणी है। उसकी जीने की प्रवृत्ति समष्टि के साथ होती है। "सार्त्र" जैसे घोर व्यक्तिवादी दर्शक स्वतंत्रता को ही मनुष्य जीवन का सार मानते हैं लेकिन "स्वतंत्रता का उपयोग करनेवाला मनुष्य एकाकीपन तथा असहायता का अनुभव करता है।"[43] अज्ञेयजी ने योके और सेल्मा इन दो प्रमुख पात्रों के माध्यम से इस समस्या को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की सेल्मा जीवन में अकेलेपन की स्थिति को मानती नहीं है। वह जीवन को साझा समझती है, जिसे आपस में बाँटकर ही खाया जा सकता है, "वह अकेले गले से उतारा नहीं जा सकता- अकेले वह भोगे भुगता ही नहीं।"[44] तब वह यान को अपने आपको समर्पित कर देती है और गृहस्थी बनाती है,

जिसमें उसकी तीन संतानें भी होती है। बाद में यान मरता है लेकिन फिर भी वह खुद को अकेला नहीं महसूस करती। उसने जीवन नये सिरे से जिया है इसीलिए उसमें वह अकेलापन महसूस नहीं करती। वह कहती है , "यही एक प्रत्यय है, जो नये सिरे से जिया जाता है और जब जिया जाता है तब फिर मरा नहीं जाता, जो प्रकाश पर टिका है, और जिसमें अकेलापन नहीं है।"[45]

सेल्मा की मरणासन्न अवस्था में योके मृत्यु की कल्पना से डरकर उसकी उपस्थिति सह नहीं पाती, लेकिन सेल्मा की मृत्यु के बाद अपने अकेलेपन को साक्षात् मृत्यु समझने लगती है। "वह और मृत्यु-गंध-अकेली वह और सर्वत्र व्यापी हुई मृत्यु-गंध -गंध के साथ अकेली वह।"[46] योके का यह भय, मृत्यु से भय उसके उस बन्द कठघरे में अकेलेपन के कारण है। उसकी इस स्थिति के लिए युवाचार्य महाप्रज्ञ का यह कथन प्रमाणित लगता है कि, "अकेला होना, एकांतवास करना परम उपलब्धि है तो परम भय का कारण भी बनता है।"[47]

इस प्रकार इस उपन्यास में 'अकेलेपन' की समस्या प्रखर रूप से योके में दिखायी देती है।

तीसरे आलोच्य उपन्यास 'लाल टीन की छत' में निर्मल वर्माजी ने इस अकेलेपन की समस्या को व्यापक रूप दे दिया है। "निर्मल वर्मा की कहानी एवं उपन्यासों में अकेलापन भोगने के लिए अभिशप्त चरित्रों की मानसिकता प्राय: मुखर है। ये चरित्र या तो प्रवासी भारतीय है या अपने ही देश में निर्वासित या आत्मनिर्वासित व्यक्ति है। अत: यह स्वाभाविक बन जाता है कि, निर्मल वर्मा के उपन्यासों में अकेलापन एक अभिशाप या आतंक बनकर व्यक्त हुआ है।"[48] वस्तुत: अकेलापन या अकेलेपन की भावना यह अस्तित्ववाद की प्रमुख समस्या है। इस उपन्यास में इसका स्वरूप प्रभावी है। डॉ. विजय मोहनसिंह के अनुसार, "दरअसल, निर्मल वर्मा यूरोप की युद्धोत्तर मन:स्थिति या संवेदना के कथाकार है, इसीलिए उनकी सबसे बडी चिन्ता इन दो संस्कृतियों के बीच की स्थिति को समझने और उसमें को स्थित करने की है।"[49] 'लाल टीन की छत' में जो 'अकेलेपन की समस्या' है वह इसी चिन्ता की देन है।

प्रस्तुत उपन्यास का हरएक पात्र इस समस्या से जुडा है। हर पात्र के जीवन में अकेलापन है। उपन्यास की प्रमुख पात्र एक लड़की के आंतरिक मनोदशा का वर्णन लेखक ने यहाँ किया है जो उम्र के बचपन और जवानी के मध्य खडी है। इसका मनोविज्ञान एक विकासक्रम से गुजर रहा है। काया के अकेलेपन की समस्या का कारण उसका परिवेश है। उसके पिताजी उसके परिवार को उस पहाडी इलाके में अकेला छोडकर दिल्ली में

रहते हैं। परिवार में काया, उसका छोटा भाई छोटे और माँ है। काया की माँ को उसकी 'माँ बनने की अवस्था' ने अपने बच्चों से दूर कर दिया है। वह अकेली एक कमरे में रहती है। इसके अलावा उपन्यास में जो और पात्र हैं, उनमें मँगतू है, जो घर का नौकर है, बूढ़ी जोसुआ जो काया के 'लाल टीन की छत' वाले घर की मालकिन है, काया का चचेरा भाई बीरू, चाचा, नथवाली औरत ये सभी पात्र काया के अकेलेपन को दूर नहीं कर सकते क्योंकि, ये सभी अकेलेपन से पीडित हैं। काया के संपर्क में इनमें से जो भी आता है, उसके सहवास के जरिए वह अपना अकेलापन दूर करना चाहता है। अकेलेपन की वजह से काया और उसके छोटे भाई की मानसिक स्थिति, इस प्रकार हो गयी है, जो उन दोनों को भाई-बहन के रूप में बर्ताव नहीं करने देती। काया घर के नौकर मँगतू के साथ लगाव से अपना अकेलापन दूर करना चाहती है, उस समय वह मँगतू के देह से आनेवाली दुर्गंध की भी परवाह नहीं करती है। "वह एकदम मँगतू के पास सट जाना चाहती थी, लेकिन मँगतू की देह की गंध एक दीवार की तरह बीच में खडी हो जाती। वह इस गंध को पहचानती थी, लेकिन उसे फाँद कभी नहीं पाती थी। किन्तु उस रात उसे कुछ भी महसूस न हुआ। वह सरकती गयी, अपनी रजाई से मँगतू के कंबल तक ..."[50]

अपना अकेलापन बाँटने के लिए काया दाई माँ के लडके भोलू, चाचा के लड़के बीरू की तरफ आकर्षित हो जाती है। यहाँ तक कि चाचा की रखैल के रूप में रहनेवाली नथवाली औरत के विकृत संबंधों के आकर्षण में भी वह फँस जाती है। "वहाँ से जाने को मन होता था- और वह बैठी रहती थी, अपने को जकडकर।"[51]

अकेलेपन की भावना काया के मन पर इतना गहरा प्रभाव है कि, अपने और अपने भाई के विकृत संबंधों को उसने अपने अकेलेपन का सहारा, आधार बना लिया है। 'छोटे का साथ न होना' उसे पाप लगता है, "पहली बार उसे छोटे का न होना एक पाप-सा जान पड़ा- शायद, पहले-पहले `पाप` का सामना भी अपने अकेलेपन में होता है।"[52] काया के यह विकृत विचार उसके अकेलेपन की भावना के कारण हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, प्रस्तुत उपन्यास में हर पात्र अकेलेपन से जुड़ा है। या तो उसने स्वयं अकेलेपन को चुना है या दूसरों द्वारा अकेला बनाया गया है। जोसुआ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उस पहाडी प्रदेश में अपनी मर्जी से पती को छोडकर रह रही है। बीरू की माँ की मृत्यु ने बीरू और चाचा को अकेला बना दिया है। अकेलेपन को दूर करने के लिए चाचा ने नथवाली औरत को माध्यम बनाया लेकिन उसे भी अकेला रहने में उन्होंने ही बाध्य किया है। ये सभी पात्र और उनका बर्ताव काया के आतंकित अकेलेपन का परिवेश बन गये हैं।

निष्कर्ष :-

'अजय की डायरी', 'अपने-अपने अजनबी', 'लाल टीन की छत' आदि आलोच्य उपन्यासों में अकेलेपन की समस्या को उभारा है। इस अकेलेपन की पीडा का वर्णन करते समय इन लेखकों पर काफ्का के विचारों का प्रभाव देखने को मिलता है। इन उपन्यासों के पात्र अजय, शीला, दीपिका, सेल्मा, योके, फोटोग्राफर, काया, काया की माँ, पिताजी, छोटे, भोलू, बीरू, नथवाली औरत, चाचा ये सारे पात्र अकेलेपन की समस्या से पीडित हैं। यह अकेलापन परिवेशजन्य मानसिकता की उपज लगता है। 'अजय की डायरी' में कश्मीर तथा अमरीका के परिवेश में अजय का अकेलापन उभर उठा है, इसके पीछे दांपत्यजीवन की नीरसता का भी कारण है। 'अपने-अपने अजनबी' में बर्फीले प्रदेश में मृत्यु के कठघरे में आबद्ध योके, सेल्मा का अकेलापन उभर उठा है। 'लाल टीन की छत' में पहाडी प्रदेश में बसी काया का अकेलापन पिताजी की अनुपस्थिति तथा माँ के अलग रहने के परिणामस्वरूप उभर उठा है। ये सारे पात्र अपना-अपना अकेलापन दूर करने के लिए उपाय ढुँढते तथा दूसरों से जुडना चाहते है।

3. जीवन की निरर्थकता की समस्या :-

यह समस्या अकेलेपन, अलगाव, अजनबीपन के परिणाम स्वरूप निर्माण होती है। इस समस्या में मनुष्य निराश बनकर जीवन के प्रति निरर्थकताबोध का अनुभव करता है।

अस्तित्ववादी विचारक हैडेगर और सार्त्र इस समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। हैडेगर के अनुसार, "मानवीय अस्तित्व `निरर्थकता और निरर्थकता` के बीच रूपायित होता है और अनुभवात्मक धरातल पर इस निरर्थकता का अनुभव लगातार होता रहता है। अस्तित्वमय की समस्यायें अनंत है और उनके रूप संसार में जीवन जीते समय प्राप्त होते हैं और निरर्थकता अस्तित्वमय को निरस्त नहीं करती, अपितु अस्तित्वमय का परिचित रूप है, अत: पुन: अस्तित्वमय को प्रश्नांकित करती है।"[53] इसी प्रकार सार्त्र का मत है कि, "वर्तमान जटिल विश्व में व्यक्तिका अस्तित्व समष्टि के समक्ष 'निरर्थकता' की सीमा तक तुच्छ हो जाता है, किन्तु अस्तित्व का स्वभाव इस निरर्थकता से निरंतर जूझना है। इसी संघर्ष के द्वारा व्यक्ति-अस्तित्व स्व अस्तित्वमय के इस स्तर पर उर्ध्वगामी वृत्तियाँ अर्जित करता हुआ अपनी आन्तरिक गरिमा उपलब्ध करता है, किन्तु निरर्थकता का यह बोध आस्तित्विक धरातल पर हमेशा व्यक्त होता रहता है।"[54] संक्षेप में हैडेगर और सार्त्र के अनुसार `जीवन की निरर्थकता` की

समस्या में भले ही व्यक्ति-स्वातंत्र्य न हो, लेकिन उस निरर्थकता से संघर्ष करना अस्तित्वमयी के लिए अनिवार्य बन जाता है।

आलोच्य उपन्यासों में अजय की डायरी` उपन्यास में इस समस्या को डॉ. देवराज उपाध्यायजी ने यही स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उपन्यास का नायक 'अजय' और उसकी पत्नी 'शीला' के संबंधों में वैचारिक भिन्नता के कारण तनाव आ गया है जिसके कारण अजय अकेला बन गया है। इस अकेलेपन में उसे कुछ पढ़ना या जीवन के बारे में दार्शनिकता से सोचना भी दुभर, व्यर्थ लगता है। परिणामस्वरूप जीवन में कोई अर्थवत्ता उसे नजर नहीं आती। "कभी-कभी लगता है जैसे यह सब शब्दों और प्रतीकों का संसार, यह सोचना, यह जीवन एक अनिर्वच अर्थ में अपूर्ण और अधूरा है।"[55] अजय अपने जीवन को उस पौधे के समीप पाता है, जो स्वतंत्रता से खुली हवा में खिल नहीं पाता।

जीवन के अधिकांश भौतिकवादी मूल्य जिसे अजय क्षुद्र समझता है, उसके लिए संघर्षरत रहनेवाले जीवन को वह निरर्थक मानता है। "उस जीवन की निरर्थकता से लगातार बचे रहने की कोशिश में ही, शायद जिन्दगी का असली महत्त्व है।"[56] अजय का यह जीवनदृष्टिकोण आस्तिक अस्तित्ववादी विचारधारा का भलीभाँति समर्थन करता है। अजय और हेम के संबंधों को जानकर शीला गुस्से में आकर अजय पर आरोप लगाती है कि वह पी. जैसा दंभी, स्वार्थी, लंपट व्यक्तित्व का आदमी है। हेम के प्यार से अजय के जीवन की संभावनाओं की आशा पली थी, शीला का यह आरोप सुनकर उसे उसका जीवन निरर्थकता में बदलता महसूस होता है, "मुझे अपने अतीत से विछिन्न और अनागत से वंचित करके आरोपक जैसे मेरे अर्थपूर्ण जीवन की हत्या कर डालना चाहता है।"[57] अजय का संवेदनशील मन यहां भावुकता से अस्तित्ववादी दर्शन की तलाश में डूब जाता है।

अजय मानवजीवन को जानवरों के जीवन से भी बदतर समझता है। उसका दावा है, कि मनुष्य जानवरों की अपेक्षा अधिक बुद्धीजीवी होने के कारण `समय काटना` जैसी समस्यायें उसके लिए उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप उसके लिए अनिवार्य होता है कि वह समय के हर लम्हे को अर्थपूर्ण बनाये। "मानो मनुष्य का यह निसर्गनियत कर्तव्य हो कि, वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को रोचक व अर्थपूर्ण बनाए..."[58] मतलब अजय ने 'जीवन की निरर्थकता' को मनुष्यजाति की एक समस्या मान लिया है। यहाँ पर वह अस्तित्ववादी विचारधारा का समर्थक जान पडता है।

व्यक्तिगत जीवन की अनुभूति ही अस्तित्व है। सार्त्र के अनुसार, "मनुष्य को जिस क्षण अपने अस्तित्व में अनास्तित्व का बोध होता है, उसी क्षण उसे दूसरे के संदर्भ में अनास्तित्व का बोध होता है। अनास्तित्व का अर्थ अपनी इच्छा के अनुसार चयन का निर्णय न कर सकने की परतंत्रता। इसी कारण अनास्तित्व निरर्थकता, अजनबीपन, असुरक्षा, तनाव, संत्रास, निराशा, ऊबकाई की स्थिति का निर्माण होता है।"[59] अल्बेर्ट कामू भी जीवन की निरर्थकता पर जोर देते हैं। 'अपने-अपने अजनबी' इस आलोच्य उपन्यास में अज्ञेयजीने इस समस्या को उठाया है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार, "जन्म और मरण के बीच एक ऐसा अल्पक्षण ही हो सकता है, जिसे व्यक्ति अपना अथवा अपनी जिन्दगी कह सकता है। ऐसी स्थिति में उसे कम-से-कम समय में अपने व्यक्तिगत जीवन को एक अर्थ देकर समर्थ बनाना होता है।"[60] सेल्मा को कैन्सर है। उसे अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपने शरीर का जिन्दापन या उसका अस्तित्व भी निरर्थक, ठंडा, मुर्दे के समान लगने लगा। हाथ से लकडी गिर जाने पर वह कहती है "निकम्मा मुर्दा हाथ।"[61] यही सेल्मा जब जवान थी तब जिन्दगी के आकर्षण ने उसे स्वार्थलोलुप बना दिया था। यान उसका मंगेतर, जब उसने सेल्मा के अहंकारी स्वभाव का परिचय देकर उसकी आँखे खोली तब उसने स्वयं को यान के लिए समर्पित करके उससे शादी कर ली। उसकी नजर में उसका जीवन सार्थ बन गया। "एक नयी गृहस्थी, तीन सन्तानें, सुख-दुःख के साझे का एक जाल जिसमें जीवन की अर्थवत्ता के न जाने कितने पंछी उन्होंने पकड़े ..."[62] यान के चले जाने पर (मरने पर) भी सेल्मा जीवन के प्रति निराश नहीं है। क्योंकि, यान के साथ बीतायी हुयी सार्थ जीवन की स्मृतियाँ उसके पास हैं, "फिर वह दिन आया कि, यान नहीं रहा, पर वह अर्थवत्ता नहीं मिटती, पाये हुअे सारे अर्थ चाहे छिन जायें। जीवन सर्वदा ही वह अन्तिम कलेवा जीवन देकर खरीदा गया है।"[63] यहाँ सेल्मा हमें नास्तिक अस्तित्ववादी दर्शन से छिटटकर अलग दिखायी देती है जरूर, लेकिन यह एक उसका अनुभव सूत्र है, जो अस्तित्ववादियों को विचारधीन बना देता है, क्योंकि सेल्मा का यह अनुभव इस बात के प्रति जागृक कर देता है कि, "अपने को सर्वथा स्वतंत्र मानना और जीवन की सभी स्थितियों में चुनने या फैसला करने के अपने अधिकार को अनियंत्रित और अबाध मानना पहला भ्रम है जो मनुष्य को असफलता की पीडासे तिलमिला देता है।"[64] मानव अपने जीवन की सुखों से वंचित हो जाता है। इसका मतलब तो हुआ कि , "मनुष्य का जिजिविषा से अधिक सर्जनशील क्षमता पर बल है।"[65] जीवन के प्रति आस्था रखकर अस्तित्ववादी चिंतन करनेवाले चिंतकों के विचार यहाँ दिखायी देते हैं।

उपन्यास का दूसरा पात्र है, 'योके।' उसका अस्तित्ववादी चिंतन उसके `अतिव्यक्तिवादी स्वतंत्रता` की भावना का प्रतीक है। बर्फ के ढ़के कठघरे में कैद उसे अपना जीवन निरर्थक पैरों का घिसटना लगता है, "एकाएक ऐसा लगत है कि, जीवन पैरों के घिसटने के सिवा कुछ नहीं है, वह धोखा है, मैं नहीं हूँ और केवल पैरों का घिसटना है।..."[66] योके ने अपनी स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा के कारण अंत में `आत्महत्या का चुनाव करके अपने जीवन को उसकी दृष्टि में सार्थ बनाया।

डॉ. वाय . बी. धुमाल के मतानुसार, "अज्ञेयजी ने यहाँ अस्तित्ववादी विवेचन पर प्रश्नचिन्ह छोड दिया है।"[67] क्योंकि उपन्यास के इन दो पात्रों में चितन के संबंध में विरोधाभास दिखायी देता है। योके ने जगन्नाथन् को अच्छे आदमी के रूप में चुना था, अगर चाहती तो उसके साथ जिन्दगी जीने का मौका उठा सकती थी, लेकिन वेश्यारूपी जीवन को समाप्त करने में ही उसने जीवन की सार्थकता महसूस की। स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा के कारण वह जिन्दगी में किसी व्यक्ति को न अपना सकी बल्कि जीवन के कारूणिक अंत को अपनाया। उसी में अपने जीवन की सार्थकता मान ली। डॉ. ज्वालाप्रसाद खेतान के अनुसार, "जीवन के पाये हुअे अर्थ छिनते रहते हैं। ईसा की माँ मरियम को जीवन वेश्या बना देता है, लेकिन साहचर्य, मानव से मानव का साथ का आलोक ऐसा स्फुरण है जो जीवन को अर्थवत्ता देता है।"[68] योके के जीवन के अंतिम क्षणों में जब उसे वेश्या का नाम दिया गया था, उसकी हालत ईसा की माँ मरियम जैसी थी, उस वक्त जगन्नाथन् ने उसे अपना साहचर्य दिया जो मानव से मानवता का प्रतीक है, जिसने योके के जीवन को, निरर्थक जीवन को अर्थवत्ता प्रदान की।

'लाल टीन की छत' में जीवन निरर्थकता की समस्या उतनी प्रबल नहीं है, जितनी उपर्युक्त दो आलोच्य उपन्यासों में। इस उपन्यास में मिस् जोसुआ अपने बुढ़ापे के अन्तिम दिनों में बीमारी के कारण इतनी असहाय बन गयी है कि, दूसरों की नजर में उसका जीवन अब निरर्थक बन गया है, "लोगों ने मिस् जोसुआ का नाम लेना छोड दिया था- सब उन्हें धीमे स्वर में, लगभग फुसफुसाते हुए 'वह' कहकर बुलाते थे जैसे धीरे-धीरे वह एक ऐसी जगह पहुँच गयी थी, जहाँ नाम के बदले सिर्फ उनका शरीर रह गया था- अँधेरे कमरे में बिस्तर पर पड़ा कोई जीव।"[69] जोसुआ के इस जीवन की निरर्थकता की परिणिती उसके मृत्यु में हो जाती है, जो अस्तित्ववादी दर्शन में जीवन का अंतिम सत्य है।

काया का अस्तित्व जब अलगाव, अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास जैसी अस्तित्ववादी

समस्याओं से घिर जाता है, तब जीवन उसे बोझ लगने लगता है, "असल में मैं अपने पर बोझ हूँ, मुझे जब तक उससे, उस `अपने` से छुटकारा नहीं मिलेगा, मैं अपने को एक लोथ की तरह घसीटती रहूँगी।"[70] काया की यह छटपटाहट उसके अस्तित्व के लिए संघर्ष का प्रमाण है। जीवन-निरर्थकता के प्रति संघर्ष का प्रमाण है।

निष्कर्ष :-

`अजय की डायरी` में अजय, शीला तथा अपने-अपने अजनबी में सेल्मा और योके जीवन की निरर्थकता में संघर्ष करके अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं। खूब प्रयत्नों के उपरान्त जीवन की निरर्थकता मिट नहीं सकती तब अत्याधिक निराशा की छाया में गुजरते गुजरते व्यक्ति अपने अस्तित्व को मिटाना चाहता है, आत्महत्या करना चाहता है। `अपने-अपने अजनबी` की योके की आत्महत्या इसका उदाहरण हो सकता है। काया की जीवन की निरर्थकता से निकलकर अस्तित्व पाने की छटपटाहट उसे सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन से मिला देती है, जो निरर्थकता से जूझना अस्तित्व का स्वभाव मानता है।

4. ईश्वर-निरीश्वर अर्थात् अस्तिक-नास्तिक की समस्या :-

अस्तित्ववादी दर्शन में दो तरह की ईश्वरविषयक चिंतन करनेवाली भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ मिलती हैं। "इस काल में दो तरह के अस्तित्ववादी विचारक हैं - जिन्हें ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी अस्तित्ववादी चिन्तकों की संज्ञा दी जा सकती है। ज्यां पॉल सार्त्र, कार्ल जास्पर्स और गैब्रियल मार्शल को कैथालिक ईसाईवाद का समर्थक और ईश्वरवादी अस्तित्ववादी मानता है, तथा डॉ.हैडगर और अपनी तथा अन्य फ्रांसीसी विचारकों एवं लेखकों की गणना अनीश्वरवादी अस्तित्ववादी चिन्तकों में करता है।"[71] आस्तिक एवं ईश्वरवादी विचारकों में कीर्केगार्द, यास्पर्स, मार्शल आस्थावादी दार्शनिक है तो हैडगर, नीत्शे, सार्त्र नास्तिक एवं निरीश्वरवादी विचारकों में आते हैं।

`अजय की डायरी` उपन्यास में डॉ. देवराजजीने अस्तित्ववाद की इन दोनों चिंतनधाराओं को समस्या के रूप में स्पष्ट किया है। प्रस्तुत उपन्यास में नायक अजय सार्त्र की तरह ईश्वर को नहीं मानता लेकिन कीर्केगार्द की तरह धर्म में आस्था रखता है। धर्म में वह ईश्वर की पूजा-उपासना को जरूरी नहीं समझता। "धार्मिक बनने के लिए किसी खास विश्वास को स्वीकार या अस्वीकार करना जरूरी नहीं है। कोई जरूरी नहीं है कि, हम पूजा-उपासना करें ही। बुद्ध ईश्वर को नहीं मानते कि, बुद्ध या महावीर धार्मिक नहीं थे?"[72] अजय ईश्वर विषयक

नकारात्मक चिंतन से सार्त्र से जा मिलता है तो धार्मिक विचारों के संदर्भ में कीर्केगार्द की हमवैचारिकता उसमें मिलती है जो "मानवीय अस्तित्व और उसके तनाव की व्याख्या ईसाई आस्था के संदर्भ में करता हैं।"[73] वह अपने बौद्धवादी विचारों से कार्ल यास्पर्स के नजदीक चला जाता है, जो "भारतीय बौद्ध दर्शन से अत्याधिक प्रभावित है।"[74]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आस्तिकता-नास्तिकता एवं ईश्वर-निरीश्वरवादिता के बारे में अजय में अलग-अलग अस्तित्ववादी दार्शनिकों के विचारों का मिश्रण मिलता है। परिणामस्वरूप हम आगे देखते हैं कि अजय के ईश्वर विषयक विचार परिस्थितिजन्य परिवर्तित होने लगते हैं। वैष्णवदेवी को जाते समय वहाँ के मंगलमयी वातावरण से वह इतना प्रभावित हो जाता है कि वह स्वयं को पाता है कि वह भी उस वातावरण में शामिल हो रहा है, "शायद माँ मेरी गोद में आकर विराजमान हो गई है, छोटे, ज्योतिर्मय अँगूठे के आकार की माँ। माँ और मैं, मैं और माँ। मैं जैसे भिन्नताओं को स्पष्टता से नहीं देख पा रहा हूँ। मैं विभ्रम में हूँ। माँ के अतुलनीय, प्रतापशाली आकर्षण की परिधि में पड गया हूँ।"[75]

हेम के प्यार में अजय को अपने अस्तित्व की रक्षा नजर आती है, हो सकता है, वह इस प्यार के लिए भी ईश्वरवादी बन गया हो। वह हेम से कहता भी है, "यह शायद तुम्हारे साथ का प्रभाव था, हेम, वर्ना मैं बड़ी संशयशील प्रकृति का आदमी हूँ।"[76] अजय अस्तित्व के लिए ईश्वर से ज्यादह औरत के प्यार को महत्वपूर्ण मानता है। इसीलिए तो लन्दन में एक गृहस्थ के उसे पूछने पर कि, मनुष्य ईश्वर के नहीं तो किसके विश्वास पर निर्भर रहेगा ? तो अजय मन ही मन कहता है, "औरत पर या फिर शराब पर।"[77]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वरविषयक विचारों के संदर्भ में अजय मानसिक द्वंद्व में फँस जाता है। अजय के अलावा अन्य पात्रों में से हेम आस्तिक एवं ईश्वरवादी है। वह कहती है, "मैं ईश्वर को जरूर ही मानती हूँ, दूसरे देवी-देवता शायद उन्ही की विभिन्न शक्तियों के नाम हैं। यों मंदिरों में जाकर देव-मूर्तियों को प्रणाम करना मुझे अच्छा लगता है ।"[78] अजय की पत्नी शीला का यह उद्धरण उसके नास्तिक होने का प्रमाण देता है, "मुझे यह ढ़ोंग पसंद नहीं है, बुआजी यह व्रत रखती रही होंगी, फिर वे सुहागिन क्यों नहीं रहीं ?"[79] यहाँ शीला कट्टर अस्तित्ववादियों में से सार्त्र का समर्थन करती है कि, "अस्तित्व यों ही बना रहता है और अचानक उसकी समाप्ति भी हो जाती है, इसीलिए ऐसी स्थिति में ईश्वर का अस्तित्व मानना ही अर्थहीन है।"[80]

'अपने -अपने अजनबी' उपन्यास में भी अज्ञेयजी ने प्रस्तुत ईश्वर-निरीश्ववाद की समस्या को उठाया है। यह स्पष्ट करते समय उन्होंने दो भिन्न भिन्न जीवनदृष्टियों की टकराहट दिखायी है। पाश्चात्य संस्कारों में पले ``अस्तित्ववादी दर्शन के चार मुख्य आयामों को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है,

(1) मनुष्य की अवशता और तज्जन्य मृत्युबोध (2) अस्तित्वबोध (3) अहं की केन्द्रीयता और (4) निरीश्वरवादिता।"[81] इनमें से चौथे आयाम का प्रतिफलन इस उपन्यास में योके के चरित्र में हुआ है। योके का जीवन-दृष्टिकोन निरीश्वरवादी है। जीवन में वह ईश्वर को मानती नहीं बल्कि मनुष्य की स्वतंत्रता को ही चरम सत्य मानती है।

योके को जर्मन सैनिकों ने वेश्या बनाया तब जीवन को निरर्थक मानकर वह खुदखुशी करना चाहती है। वह चाहती है, मरते-मरते वह स्वतंत्रता से मर जाए। एक अच्छे आदमी की बांहों में वह मृत्यु का स्वतंत्रता से वरण कर लेती है। "जगन्नाथन् की बांहों में जहर खाकर मरना, एक तरह से ईश्वरीय न्याय के प्रति विद्रोह है। जहाँ भारतीय मृणाल (त्यागपत्र) खराब से खराब परिस्थितियों में भी आत्महत्या का वरण नहीं करती, वहाँ पाश्चात्य योके आत्महत्या करके इस वरण की स्वतंत्रता का दावा करती हुई मानो ईश्वर को चुनौती देती है।"[82] योके जीवन के अन्त तक ईश्वर पर चिढ़ी हुई है। बर्फ से ढके कठघरे के अकेलेपन में वह ईश्वर के प्रति इनती आक्रान्त होती है कि ईश्वर को गालियाँ भी देती है, "ईश्वर का नाम ले-लेकर गालियों को दोहराने लगी और साथ-साथ दरवाजे पर घूँसे मारने लगी।"[83]

सेल्मा के मृत शरीर को दफनाने के बाद भी योके ईश्वर को याद नहीं करती क्योंकि, उसकी नजर में "ईश्वर केवल एक अभ्यास है और उसके नाम पर थूंकना भी एक अभ्यास है।"[84] यहाँ योके प्रबल मानववाद की भावना के जरिए सार्त्र के दर्शन से जा मिलती है, "क्या कहीं भी ईश्वर है, सिवा मानवों के बीच इस परस्पर क्षमायाचना के संबंधों को छोडकर?"[85] योके के यहां पर मानववादी विचार दिखायी देते हैं। यही कारण है कि, हिन्दी एवं मराठी के समीक्षक डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर जी योके की निरीश्वरवादिता के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं - "ईश्वर पर अब भी उसका विश्वास नहीं, परंतु मानव के रूप में उसने जगन्नाथन में ईश्वर का साक्षात्कार किया और उसकी क्षमा भी मांगी।"[86] मरकर भी योके पश्चिम के रूप में स्वयं के अस्तित्व से ईश्वर के अस्तित्व पर तीखा व्यंग्य करती है, "योके मर गयी, मरियम कभी नहीं मरती।"[87] अंत में इस प्रकार उसने

अपनी स्वतंत्रता को सिद्ध कर लिया जो ईश्वर अब तक उसे नहीं दे रहा था।

उपन्यास की दूसरी पात्र सेल्मा जो पूरब के जीवनदृष्टिकोन का प्रतिनिधीत्व करती है, अपनी मृत्यु के माध्यम से ईश्वर को पहचानने की कोशिश करती है। "मौत और ईश्वर को हम अलग-अलग पहचान भी तो कभी-कभी ही सकते हैं। बल्कि शायद मन से ईश्वर को तब तक पहचान नहीं सकते जब तक कि, मृत्यु में ही उसे न पहचान लें।"[88] इस प्रकार सेल्मा मृत्यु को ईश्वर का रूप मानती है, इसीलिए उससे डरती नहीं है जबकि निरीश्वरवादी योके 'मृत्यु' को नजदीक पाकर उसके भय से ईश्वर के प्रति आक्रोशित हो जाती है क्योंकि, उसे "सिखाया गया है कि ईश्वर है, इसीलिए मृत्यु नहीं है।"[89]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में अस्तित्ववादी दर्शन की ईश्वरवादी एवं निरीश्वरवादी दोनों धाराओं को समस्या के रूप में सोचा गया है।

'लाल टीन की छत' इस उपन्यास में निर्मल वर्माजीने सिर्फ काया के माध्यम से अपने आस्तिक अस्तित्ववादी विचार स्पष्ट किये हैं। काया इस उपन्यास में आस्तिक अस्तित्ववादी विचारधारा का समर्थन करती है। वह अकेलापन, अजनबीपन, अलगाव, संत्रास आदि अस्तित्ववादी संकटों से पीडित है, जिससे छुटकारा पाने के लिए वह छटपटाती रहती है। छुटकारा पाने के लिए वह ईश्वर की प्रार्थना भी करती है। एक बार तो वह मानसिक रूप से वह इतनी संत्रस्त हो जाती है, कि मुक्ति के लिए आत्मनिर्वासन यह एक ही रास्ता उसे सही लगता है, लेकिन जब वह पूर्ण से शारिरीक परिपक्व हो जाती है, "तब इन अस्तित्ववादी समस्याओं से उसे मुक्ति मिलती है, वह मानसिक रूप से नार्मल बन जाती है, वह उस अस्तित्व को पा लेती है, जिसके लिए ईश्वर उसे अब तक तड़पा रहा था, तब वह सोचती है, ``मैं ईश्वर के पास पहुँचकर उसके परे निकल गयी थी ..." [90]

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि, 'अजय की डायरी' और 'अपने-अपने अजनबी' में अस्तित्ववाद की दोनों धाराओं का जिक्र मिलता है, जिसके कारण इन उपन्यासों में सभी अस्तित्ववादियों के विचारों को दर्शन होते हैं, फर्क इतना है कि, 'अजय की डायरी' में इन दोनों चिंतनधारा का समर्थन एक ही पात्र अजय करता है, जबकि 'अपने-अपने अजनबी' में इन्हें व्यक्त करने के लिए अज्ञेयजीने दो भिन्न वातावरणों में पले व्यक्तित्वों एवं

जीवनदृष्टियों को प्रस्तुत किया है। 'लाल टीन की छत' में निर्मलजी ने कथा के अंत तक काया के माध्यम से ईश्वरवाद को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया लेकिन अंत में अस्तित्व पाने के बाद काया का 'ईश्वर के परे निकल जाना' यह बात उनके अस्तित्ववादी दर्शन पर प्रश्नचिन्ह छोड देती है कि, इस बात से क्या उन्होंने ईश्वरवाद से मानववाद को श्रेष्ठ बनाया है ?

अजय की डायरी में शुरू में नास्तिक लगनेवाले अजय को बाद में आस्तिक बनाकर उसके ईश्वरविषयक चिंतन में लेखक ने बदलाव की स्थितियों को उत्पन्न किया है। हेम को आस्तिक और शीला नास्तिक दिखाकर पात्रों के वैचारिक संघर्ष को बढ़ावा दिया है। 'अपने-अपने अजनबी' की सेल्मा अपने अस्तित्व को ईश्वर की देन मानती है। योके निरीश्वरवादी तथा नास्तिक है। जर्मन सैनिकों से बलात्कारित योके को वेश्या बनना पडता है। इस स्थिति में वह अपने जीवन को मिटाना चाहती है फिर भी एक अच्छे व्यक्ति की गोद में। उसका जगन्नाथन् को चुनना भारतीय संस्कृति के प्रभाव का असर लगता है। लेकिन, वह अंत तक ईश्वर को मानती नहीं है।

5. स्वतंत्रता की समस्या :-

अस्तित्ववादी दर्शन में मनुष्य की स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण माना गया है। अस्तित्ववाद के अनुसार "विश्व और समाज के नियम-कानूनों के वैज्ञानिक बोध-मात्र में मुक्ति नहीं है, वह व्यक्ति की समग्र दायित्व इस चेतना में है कि, ``मैं अपना साक्षी स्वयं हूँ।"[91] ज्ञास्पर्स, हैडेगर, मार्शल ये "सभी अस्तित्व के वास्तविक यानी व्यक्तिगत रूप के प्रति सचेत है। व्यक्ति-अस्तित्व को सभी स्वतंत्रता का पर्याय मानते हैं।"[92] यास्पर्स के मतानुसार स्वतंत्रता का महत्त्व मनुष्यजाति में अटल है। वह कहता है, "Existence for me is this choice of myself in liberity" [93] अर्थात् उसके अनुसार "मेरे लिए वास्तविक अस्तित्व का अर्थ है मेरी अपनी मौलिक स्वतंत्रता और उसके आधार पर अभीष्ट वरण की पूरी छूट है।"[94] ``यह स्वतंत्रता दॉस्तोव्हस्की के विचार से सर्वानुशासक तत्व है, जिसके बिना संसार में किसी भी प्रकार की समन्वयधर्मिता (हॉरमोनी) का उदय नहीं हो सकता।"[95] सार्त्र के लिए "मनुष्य वही हो सकता है जो वह अपने को बताता है। इसीलिए अपनी निर्मिती के लिए वही सब प्रकार से उत्तरदायी है।"[96] सार्त्र के इस मानववाद में उसके स्वतंत्रता की भावना का समर्थन है।

'अजय की डायरी' उपन्यास का नायक अजय मनुष्य की स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण मानता है।

उसके अनुसार मनुष्य में दूसरों के विचार अपने ऊपर लादने की परतंत्रता नहीं है क्योंकि वह पशु नहीं है, जिनमें स्वतंत्रता नहीं है। दीपिका से वह कहता है, "मनुष्य लगातार यह झगडा करता आया है, और करता रहेगा, वर्ना वह स्वतंत्र मनुष्य न रहकर परतंत्र पशु बन जाएगा।"[97] उपन्यास में एक जगह पर स्वतंत्रता की भावना को शरीरशास्त्र के दृष्टिकोण से सोचा है। जाँच के लिए डॉक्टरद्वारा शरीर से खून निकालने पर अजय बेहोश हो जाता है। होश आने पर उसे लगता है, कोई 'अपना' उसके पास हो। तब उसे लगता है, खून निकालने पर ही यह परतंत्रता की, दूसरे निर्भर होने की भावना उसमें जग गयी। मतलब, मनुष्य की 'स्वतंत्रता' की भावना का संबंध उसके शरीर के खून की मात्रा पर निर्भर है। वह सोचता है, "यदि शरीर में रक्त अधिक है, तो आप ज्यादा 'स्वतंत्र' हो सकते है, ज्यादा निरपेक्ष, तब उनका उतना ध्यान नहीं आता जो बीमारी में तीमारदारी में कर सकते हैं।"[98] खून का अतिरेक भी अजय को लगता है कि, मनुष्य को परतंत्र बना देता है, स्वतंत्र नहीं रहने देता। मनुष्य को वह भौतिक सुखों के लिए उकसाता है। "रक्त का अतिरेक- वह भी परतंत्र बनाता है, वह शरीर को भौतिक सृजन के लिए उकसाता है, नारी की ओर उन्मुख करता है।"[99] यहाँ पर अजय के विचार स्वतंत्रता की भावना को अलग ही मोड देते हैं।

अमरीका के यात्रा के दौरान भी अजय स्वतंत्रता के बारे में अस्तित्ववादी ढ़ंग से सोचता है, "जी हां, मुझे मुक्ति चाहिए, बुद्ध का निर्वाण। सभ्यता से मुक्ति? कविता से ? दर्शन से? इतिहास से? जी मैं आजादी चाहता हूँ। पूर्ण स्वातंत्र्य, आत्मवश्यता।"[100] उसे लगता है कि, "काश जिन्दगी का हर क्षण, हर लम्हा अलग जीने को स्वतंत्र होता।"[101]

अजय के अलावा इस उपन्यास में दीपिका में यह अस्तित्ववादी भावना प्रबल दिखायी देती है। वह कहती है, "अपने वर्तमान और भविष्य के लिए मैं खुद जिम्मेदार हूँ। आप चाहते हैं कि, सब लोग एक ढ़र्रे के हों, किसी का अलग, निजी व्यक्तित्व न हो। इसके विपरीत मैं मानती हूँ कि मुझे दूसरों से भिन्न होने का पूरा अधिकार है।"[102] दीपिका यहाँ पर सार्त्र के अस्तित्वाद का समर्थन करते दिखायी देती है। दीपिका में अमरीकी संस्कृति के स्वतंत्रता की चाह है, "सोचती हूँ, क्या कभी हम लोग इस योग्य होंगे कि अमरीकी युवक-युवतियों की जैसी स्वतंत्रता का उपभोग कर सकें।"[103]

इस प्रकार इस उपन्यास में अजय और दीपिका स्वतंत्रता की भावना के बारे में अस्तित्ववादी ढ़ंग

12524
A

से सोचते दिखायी देते हैं। यह स्वतंत्रता विदेशी संस्कृति की उपज लगती है।

अस्तित्ववादी दर्शन में 'स्वतंत्रता' यह मानव का एक विशेष अधिकार है। विश्व का हर एक मानव वरण करने के लिए स्वतंत्र है। 'अपने-अपने अजनबी' में अज्ञेयजी ने यह समस्या 'योके' के माध्यम से प्रभावी ढंग से व्यक्त की है। 'सेल्मा' के लिए यह समस्या नहीं है, क्योंकि वह स्वयं को स्वतंत्र मानती ही नहीं। उसके अनुसार मनुष्य के लिए इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है कि, वह अपने मर्जी से चुनकर मर जाए। "मैं क्या स्वतंत्र हूँ कि, बीमार न रहूँ -या कि अब बीमार हूँ तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हूँ कि, मर जाऊँ?"[104] बिल्कुल इसके विपरीत योके का मत है। उसने अपनी मर्जी से अपनी मृत्यु को चुना है। तभी तो वह अपने मर्जी से चुने हुअे अच्छे आदमी जगन्नाथन् की बांहों में दम तोडते-तोडते कहती है, "मैंने चुन लिया। मैने स्वतंत्रता को चुन लिया।"[105] लेकिन स्वतंत्रता की भावना व्यक्ति को बेचैन कर देती है, अराजक बना देती है "सार्त्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना सत्य, अपनी नीतिमयता, अपने आदर्श चुनने की स्वतंत्रता है। इससे समाज में अराजकता भी पैदा हो सकती है। उसका यह दृष्टिकोण विनाशवाद (nihilism) कहा गया है।"[106] इस बात का प्रमाण हमें योके की `आतंकभावना` में मिलता है। सेल्मा का ईश्वरवाद उसका स्वतंत्रता की भावना को नकारना योके को असह्य होने लगा। सेल्मा को जान से मार डालने की हिंसा उसमें जन्म लेती है। उसे लगता है कि उसके हाथों ने सेल्मा का गला घोंटने के लिए उसकी गरदन को घेर लिया है। इस समय उसे अपने अस्तित्व का भी भ्रम होने लगता है, "क्या ये हाथ-ये समर्थ और कर्मठ हाथ, जिसमें एक स्वतंत्र इच्छा और कारक शक्ति है, मेरे ही हाथ है?"[107] इस प्रकार `स्वतंत्रता की भावना` मनुष्य में आतंक की भावना जगाती है, जो मनुष्यजीवन की समस्या बन जाती है।

`लाल टीन की छत` में निर्मल जी ने इस समस्या को स्पष्ट रूप नहीं दिया है, क्योंकि, काया, इतनी बुद्धिजीवी नहीं है, जितने की `अजय की डायरी` या `अपने-अपने अजनबी` के पात्र। उसकी सोच इतनी परिपक्व नहीं है। उसकी मनोदशा या सोच का वर्णन निर्मलजीने `मानसशास्त्र` के आधार पर किया है। काया स्वतंत्रता चाहती है, लेकिन संकट से छुटकारे के स्तर पर। " मैं हमेशा छुटकारा पाने के लिए तडपती थी, भय से, स्मृतियों से, दूसरों के आतंक से --"[108] यह छुटकारा पाने पर उसे अच्छा लगता है, वह स्वयं को स्वतंत्र महसूस करती है, "अचानक मुझे लगा, मैं हल्की हो गयी हूँ, सबसे मुक्त और स्वच्छ..."[109]

T

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि, प्रत्येक उपन्यास में `स्वतंत्रता की समस्या` का कम-अधिक मात्रा में स्पष्टीकरण दिया है। 'अजय की डायरी' में अजय और दीपिका में यह भावना निहित है। अजय को स्वतंत्रता पसन्द है, लेकिन स्वतंत्रता की भावना से फैलनेवाला भौतिकवाद उसे पसन्द नहीं क्योंकि, समाज में मूल्य-स्थापना का वह समर्थक है। `अपने-अपने अजनबी की योके को स्वतंत्रता की भावना ने विद्रोही बना दिया। उसने मृत्यु का स्वतंत्रता से वरण कर अपने जीवन के `न होने` में भी अपने अस्तित्व के `होने` का प्रमाण दिया। `लाल टीन की छत` की काया की स्वतंत्रता की भावना ने उसे अपने अस्तित्व की पहचान करा दी और अस्तित्ववादियों का यह दावा यहां सिद्ध हो जाता है कि, मनुष्य के अस्तित्व के लिए, उसका स्वतंत्र हो जाना अनिवार्य है।

6. अलगाव की समस्या :-

अकेलेपन या अजनबीपन की भावना की निर्मिती मनुष्यजीवन में `अलगाव` की समस्या को उत्पन्न कर देती है। यह भावना तनाव एवं विछिन्नता की भावना को भी जन्म देती है। इसमें मनुष्य दुहरे रूप में व्यवहार करता है, "अलगाव की प्रतिक्रिया अस्तित्वमय की चेतना विभिन्न भावरूपों को जन्म देती है। संसर्ग और अर्जित आदतें उसके आन्तरिक और बाह्य रूप में परस्पर तनाव और वैषम्य को व्यक्त करती है। स्थापित मान्यताओं और सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण व्यक्ति दूसरों के समक्ष एक तरह का आचरण करता है और वैयक्तिक धरातल पर अपनी स्वयं की चेतना के अनुरूप दूसरी तरह से सोचता है और व्यवहार करता है।"[110] डॉ. शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, "मशीनी सभ्यता ने आज के मनुष्य और उसके सामने विद्यमान जगत् के बीच अफाट अलगाव और विसंगति खडी कर दी है। यह तकनीकी अलगाव की समस्या है, जिससे उबरने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है।"[111]

आलोच्य उपन्यासों में `अजय की डायरी` उपन्यास का नायक इस समस्या का शिकार हो गया है। उसका दांपत्यजीवन इस समस्या की चपेट में आ गया है। अजय और उसकी पत्नी शीला में जीवन-दृष्टिकोणों की भिन्नता है। सोसायटी, उसके लोग इसके बारे में दोनों के विचारों में अलगाव है। "असली कठिनाई यह है कि, हम दोनों को अलग-अलग किस्म की सोसायटी चाहिए।"[112] अजय और शीला के बीच का यह `अलगाव` शीला के सुखलोलुप स्वभाव के कारण है। शीला के अजय की अर्थिक स्थिति से समझौता न कर

सकने के कारण दोनों में यह अलगाव है। शीला के व्यावहारिक बर्ताव से अजय का दम घुटने लगता है और शीला से वह अलगाव ही पसंद करने लगता है, "मैं अलगाव और दूरी चाहता हूँ, मुक्ति का वातावरण, जहाँ मैं आजादी से सांस ले सकूँ।"[113]

अजय शीला से मानसिक अलगाव के कारण शारिरीक अलगाव चाहता है, लेकिन पति-पत्नी का बंधन उनके इस अलगाव को रोके हुए है। "भौतिक अलगाव होते हुए भी मानो अलगाव है नहीं, मन की दूरी भी मानो काफी नहीं है। समाज द्वारा निष्पन्न संबंध की यथार्थता जैसे मेरे आत्म को बांधकर उसे निरपेक्ष स्वतंत्र रूप में जीने के अयोग्य बना देती है।"[114] इस प्रकार आज की भौतिकवादी सभ्यता ने अजय और शीला में अलगाव का निर्माण किया है।

अजय और हेम में भी इस `अलगाव` का पुट मिलता है। कश्मीर सैर के दौरान अजय के मन में हेम के प्रति प्रेम का निर्माण होना, हेम का भी उसकी तरफ आकृष्ट होना लेकिन उसके द्वारा इस बात का अपने साथियों को पता न लगने देना, साथियों को दिखाने के लिए हेम का अजय से अलग रहना और दोनों का अलगाव की स्थितियों से गुजरना इन बातों का वर्णन अजय करता है, "हमेशा साथ रहते हुए भी वह जैसे मुझसे सतत अलग रहती है। इस अलगाव का एक कारण दूसरों की उपस्थिति है, दूसरा हेम का अनासक्त भाव।"[115] दोनों के प्यार में यह अलगाव दोनों का भिन्न-भिन्न जीवनदृष्टिकोण है। अजय प्यार को स्वच्छंदता से भुगतना चाहता है जबकि हेम समाज से डरती है।

आधुनिक युग में इस समस्या ने व्यापक रूप ले लिया है। "जब तक यह अलगाव दूर नहीं होता, मनुष्य की जिन्दगी में सामरस्य स्थिति का उदय नहीं हो सकता।"[116] `अपने-अपने अजनबी` इस उपन्यास में यह अलगाव योके एवं सेल्मा के दरम्यान है। योके और सेल्मा नियतिवश इकठ्ठा रहती है, लेकिन दोनों में वैचारिक मतभिन्नता होने के कारण दोनों में 'अपनेपन' की भावना कभी आती नहीं। सेल्मा का यह उद्धरण उनके बीच के `अलगाव` का परिणाम है। ``मैं क्या खाती पीती हूँ इससे तुम्हे क्या मतलब है ? तुम यहाँ मेहमान हो, लेकिन इससे ..."[117] दोनों में हमेशा वैचारिक बहस चलता रहता है, जिसके कारण वे दोनों कभी एक दूसरे के करीब नहीं आ सकती, "जब भी उसके पास जाने की बात सोचती तो लगता कि हम दोनों के बीच कोई समान्य भाषा नहीं है।"[118] इस प्रकार का अलगाव योके और सेल्मा में अजनबीपन की भावना को भर देता है।

निर्मल वर्मा के उपन्यास `लाल टीन की छत` में भी यह 'अलगाव' उसके पात्रों में दिखायी देता है। काया और छोटे, ये बच्चें अपने माँ और पिताजी से अलग हैं। मँगतू जो घर का नौकर है, वह भी सिर्फ अपने काम से मतलब रखता है। काया की माँ, अपनी `माँ बनने` की अवस्था के कारण एक कमरे में सबसे अलग और अकेली रहती है, "बिस्तर हिला, तो माँ कि आँखे झपाट-से खुल गयी। कहा कुछ नहीं, एकटक काया की तरफ देखती रही। प्यार से नहीं, चिन्ता से भी नहीं, सिर्फ अपने `अलगाव` की फडफडाती लौ में काया को टटोलती हुओ।"[119] इस उपन्यास के सिर्फ पात्र ही नहीं, बल्कि काया को लगता है कि उसका सारा घर परिवेश ही इस अलगाव की समस्या में डूबा हुआ है। "पीछे मुडकर अपने घर को देखा। दो चिमनियाँ। खूबानी का पेड। सब एक-दूसरे से अलग हो गये थे।"[120] काया को यह अलगाव जोसुआ में भी नजर आता है, जो अपनी बीमारी की अवस्था में, जीवन की अंतिम सांसें गिन रही थी, "मैं उनसे चिपटकर बैठी हूँ, जबकि वह सबसे अलग हो रही है।"[121] इस प्रकार इस उपन्यास में काया, मँगतू , जोसुआ आदि पात्र इस समस्या से पीडित है।

निष्कर्ष :-

`अजय की डायरी` में `अलगाव` की समस्या है, वह बेशक आज की यांत्रिक और आधुनिक सभ्यता के कारण है जबकि, अपने-अपने अजनबी` का अलगाव दो भिन्न व्यक्तित्वों के विचारों की टकराहट के कारण है। वास्तव में यह संघर्ष आस्तिक और नास्तिक विचारधारा में ही है। `अजय की डायरी` के अजय, शीला, हेम इस समस्या से पीडित हैं। भिन्न-भिन्न रूचियों के कारण पति-पत्नी अजय और शीला एक दूसरे से अलगाव की स्थिति को भुगत रहे हैं। हेम का अलगाव यहाँ स्वीकृत अलगाव लगता है। `लाल टीन की छत` की काया अलगाव से पीडित है। अपनी गर्भवती माँ, अपने घर का नौकर मँगतू, जोसुआ आदि से वह अलगाव स्थापित कर चुकी है। उसके अलगाव का विश्व मनोवैज्ञानिक है। जोसुआ शारीरिक पीडा और मृत्यु की भावना से `अलगाव` में आ गयी है।

7. अजनबीपन की समस्या :-

`अजनबीपन ` यह अस्तित्ववादी समस्या आज के युग की प्रमुख समस्या बन गयी है। "अजनबीपन दु:ख और व्यथा की वह अवस्था है, जिसमें कोई लक्ष्य नहीं होता, इसीलिए इसमें सब कुछ खो गया

है - ऐसा अनुभव होता है।"[122] प्रगतिवादी समीक्षक अमृतराय अजनबीपन को आधुनिक युग की बड़ी समस्या मानते हैं। उनके अनुसार, "यह समस्या मुख्यत: महानगरीय जीवन की है, जहाँ केवल प्रयोजन के संबंध है, शुद्ध मानवीय स्तर पर भी कोई संबंध हो सकता है, इसकी संज्ञा जैसे लुप्त हो गई है। इस निर्लज्ज पैसा पूजक, सफलतापूजक समस्या में सामाजिक मान-सम्मान और प्रतिष्ठा की कसौटी केवल धन है।"[123] `अजय की डायरी` उपन्यास की यह अजनबीपन की समस्या लगभग ऐसी ही स्थिति की देन है।

अजय को शहरी वातावरण की भौतिक एवं यांत्रिक सभ्यता बेचेन कर देती है। यही कारण है कि, कश्मीर की सैर से लौटने के बाद दिल्ली के वातावरण में वह अपने आपको अजनबी पाने लगता है। "मेरी मनोवृत्ति उखड़ी-उखड़ी सी हो रही है। इस पुराने परिचित परिवेश में एक अजीब परायेपन का अनुभव करता हुआ, मैं जैसे अपने को फिट नहीं कर पा रहा हूँ।"[124] अजय अभी तक कश्मीर के सुनहरे पल भूला नहीं पाया है, जहाँपर उसे हेम का आत्मिक प्यार और मन की शान्ति, किसीसे अपनेपन का एहसास मिला था।

अजय इस समस्या का अनुभव अमरीका में भी करता है। वहाँ की `अपरिचितों से भी खुलकर मिलने` की संस्कृति में स्वयं में संकोच सा अनुभव करता है, "मुझे अपरिचित लोगों से यकायक निजता से बात करना अस्वाभाविक लगता है।"[125] इस प्रकार अजय में यह अजनबीपन की समस्या उसके `अकेलेपन` की समस्या को भी जन्म देती है। डॉ. बच्चनसिंह के अनुसार, "जनसंख्या की वृद्धि के साथ भीड का दबाव बढ़ता जा रहा है, जिससे मनुष्य अपने को `अधिकाधिक कटा हुआ` और `बेगाना` महसूस कर रहा है।"[126]

आलोच्य उपन्यासों में अज्ञेयजी के `अपने अपने अजनबी` में भी इस समस्या का स्वर मुखरित हो उठा है। इस समस्या के निर्माण में अस्तित्ववादी विचारक दॉस्तोव्हस्की ने मनुष्य की जिजिविषा को प्रधान माना है। उसके अनुसार, "मानव की जिजिविषा बड़ी प्रबल है। भयंकर त्रासद स्थितियों के बीच दबी होने पर भी वह कहीं न कहीं से ऊपरी परत तोडकर उग आती है। इसी संत्रास, अमानवीयता और अन्याय की स्थितियों में से अजनबीपन का बोध उभरने लगता है जो धीरे-धीरे मानव की प्रबल जिजिविषा पर हावी होकर व्यक्ति को इस दुनिया से बेगाना बना देता है।"[127]

योके की यही जिजिविषा उसे सेल्मा से अजनबी बना देती है, "वह मेरे लिए अजनबी है।"[128]

सेल्मा और योके अलग-अलग संस्कारों में पले व्यक्तित्व है, जिसके कारण उनमें वैचारिक भिन्नता प्रबल है और वे एक-दूसरे से रागात्मक संबंध नहीं रख पाती। "दोनों एक विवश और जडीभूत संसार में रह रही है और एक दूसरे के लिए अस्तित्व के स्तर पर अजनबी है।"[129] बार-बार उन दोनों में कोई बहस छिड जाती है और दोनों एक-दूसरे से परायापन एवं अजनबीपन महसूस करने लगते हैं। "जैसे फिर क्षणभर में हम दोनों अजनबी हो गये।"[130] सेल्मा योके से अपनी अकेलेपन की भावना के कारण अजनबीपन महसूस करती है, "मैं जान-बूझकर यहाँ अकेली रह गयी थी-तुम्हारा आना तो एक संयोग था, जिसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।"[131]

मृत्यु के बाद अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए योके `अजनबी` जगन्नाथन् को `अच्छे आदमी के रूप में अपना बना लेती है, "मैंने चुना। हम अजनबी नहीं चुनते, अच्छे आदमी चुनते हैं।"[132] अज्ञे यजी इस उपन्यास उपन्यास में इस मानव प्रवृत्ति की ओर संकेत करना चाहते है, कि अस्तित्वसंकट के समय मनुष्य को कैसे `अजनबी प्रिय` और `प्रिय अजनबी` हो जाते हैं। योके के लिए उसका प्रेमी पॉल अजनबी` बन गया, क्योंकि उसने पॉल में वह समर्पण भाव नहीं पाया था, जो अजनबी जगन्नाथन् में पाया था। पॉल के बारे में वह जगन्नाथन् से कहती है कि अन्त में मैं जीत गयी यह बात उसे `पॉल से, उस अजनबी"[133] से कह दो। पॉल के लिए योके का अजनबीपन उसके इस उद्धरण से भी स्पष्ट होता है, "कौन है पॉल ? कौन है यह अजनबी जो इस तरह चिल्लाता हुआ इशारे करता हुआ उसकी ओर बढ़ रहा है ?"[134]

योके की मौत पर एक बूढ़े आदमी ने किया हुआ क्रूस का चिन्ह, जो भगवान से प्रार्थना का प्रतीक था कि योके की आत्मा को शान्ति मिले, "वह चिन्ह भी सूने आकाश में अजनबी-सा टँगा रह गया।"[135] अज्ञेयजी के इस विधान से स्पष्ट होता है कि, जिस् अजनबी जगन्नाथन् ने योके को अपनेपन का सहारा दिया था, उसीके समाज में योके अंत में अजनबी रह गयी। वास्तव में अज्ञेयजी का यह विधान उनके अस्तित्ववादी चिन्तनधारा पर प्रश्नचिन्ह छोड देता है।

निर्मल वर्माजी के `लाल टीन की छत` में `काया` इस प्रमुख पात्र के माध्यम से इस समस्या का प्रकटीकरण हुआ है। काया इतनी प्रगल्भ नहीं है कि, वह औरत की `माँ बनने की` अवस्था को समझ सके। इस अवस्था में उसे अपनी माँ अजनबी लगने लगती है। "वह कोई दूसरी औरत है, जिनका चेहरा सिर्फ माँ से मिलता है, बाकी सब कुछ पराया है, जैसे वह किसी अजनबी घर में रह रही है।"[136] काया अपने अकेलेपन को अपने

आस-पास के पहाडों के साथ बाँटती है, जिससे उसे वह `अपने` लगते हैं।अपने माँ की दर्दभरी, मर्मान्तक चीख सुनकर उसे वह `अपने` पहाड भी अजनबी लगने लगते हैं। "पहली बार उसे यह चीख भयानक सी जान पड़ी, जिन पहाडों को वह इतना अपना समझती आयी थी, अचानक उस रात वे अजनबी-से जान पडे-जैसे उनका उससे कभी वास्ता न रहा हो।"[137] वर्माजी के उपन्यास में प्रकृति की हर चीज `व्यक्तित्व` धारण कर लेती है और वर्माजी के अस्तित्ववादी दर्शन का माध्यम बनती है।

चाचा के घर में वह देखती है कि, वहाँ चाचा, बीरू तथा घर के अन्य सदस्य एक-दूसरे से अजनबी बन गये हैं। परिणामस्वरूप काया को वहाँ होनेवाली बारिश भी अजनबी लगती है। "बाहर अंधेरे में पानी बरस रहा था। पराये घर में बारिश भी अजनबी हो जाती है।"[138] काया बीरू से भी इस अजनबीपन की भावना को महसूस करती है। उसे बीरू के व्यक्तित्च के दो रूप और वे भी एक-दूसरे से अजनबी जान पडते। "कभी एक के पास आ जाती तो दूसरा अजनबी-सा जान पडता, दूसरे को पहचानने लगती, तो पहला दूभर हो जाता।"[139]

निर्मलजीने इस समस्या के माध्यम से काया की मनोदशा का वर्णन किया है।

निष्कर्ष :-

वास्तव में देखा जए तो आलोच्य उपन्यासों में `अजय की डायरी` और `लाल टीन की छत` में इस अजनबीपन की समस्या ने उतना विस्तार नहीं पाया है, जितना कि, `अपने-अपने अजनबी` में। उसके शीर्षक से ही पता चलता है कि, `अजनबीपन` इस मनोवैज्ञानिक लेकिन अस्तित्ववादी समस्या को सामने रखकर ही अज्ञेयजीने यह उपन्यास लिखा है। इसमें चित्रित प्रमुख पात्रों का `अपने-अपने अजनबीयों से पाला पड़ा है। इस समस्या में अस्तित्वरक्षा का संघर्ष निहित है।

`लाल टीन की छत` का अजनबीपन परिवेशजन्य एवं विकृत मनोविज्ञान से जुडा हुआ है। `अजय की डायरी` में अजय की अजनबीपन की समस्या आज के यांत्रिक एवं मशीनी सभ्यता की देन है।

8. ऊबकाई की समस्या :-

`ऊबकाई की समस्या` जीवन की निरर्थकता की भावना से उत्पन्न होती है। सार्त्र भी इसी बात

का समर्थन करता है। अपनी "आरंभिक कृति `नौसिया` में उन्होंने शक्वेन्तिन के माध्यम से सजीव और निर्जीव दोनों ही अस्तित्वों को निरर्थकता का बोध कराया है। उसके परिणाम से उत्पन्न `नौसिया` (वमनेच्छा या ऊबकाई) का रूप भी दिखाया है।"[140] सार्त्र उसमें राक्वेन्तिन के माध्यम से लिखता है, "मैं जान गया कि, मुझे अस्तित्व की, ऊबकाई की या मेरे जीवन की कुंजी मिल गयी है- और सच, उसके बाद से जो भी चीजें मैंने समझी, वे सब इसी निरर्थकता की श्रेणी में आती हैं।"[141] संक्षेप में , उसने जीवन के निरर्थकता की भावना में ही ऊबकाई के समस्या की निर्मिती मान ली।

`अजय की डायरी` का अजय भी ऊबकाई की भावना को निरर्थक जीवन का प्रतीक मानता है। वह आशावादी है। उसके आशावादी प्रवृत्ति का सबूत है, उसका `क्रिएटीव प्रोसेस`। वह सोचता है, "ऊब यानी प्रतिक्रिया की स्फूर्ति का अभाव-जीवन और परिवेश में सार्थकता की अप्रतीति, जिससे सृजनशील जीवन-क्रिया में अवरोध होता है।"[142]

अजय को डॉ. निगम की बातों से ऊब होती है, क्योंकि, निगम अपनी बातें दूसरों पर लादना चाहता है, जबकि अजय स्वतंत्रता का पूजारी है। अजय को निगम की मनोवृत्ति संक्रामक लगती है। "कभी-कभी उसकी बातचीत से खीझ हो जाती है। और ऊब भी-उसकी ऊब, ऊब में निहीत मनोवृत्ति, संक्रामक है।"[143] अजय की ऊबकाई की भावना समाज में चले अमानवीयता के कारण है, जिसका प्रतिनिधीत्व पी. जैसे भ्रष्टाचारी लोग करते हैं। "मुझे लगता है कि, मेरी यह ऊब समाज और उसकी उस नियति के प्रति थी, जहाँ इस तरह का आचरण और वैसे प्रश्न होने और उठने दिये जाते हैं।"[144] लेकिन अजय आशावादी प्रकृति का होने के कारण वह इस ऊब एवं उकताहट से दूर रहकर जिन्दगी गुजारना चाहता है, "नहीं-नहीं, मेरे जीवन में ऊब नहीं होनी चाहिए। मुझे बहुत कुछ सोचना है, बहुत कुछ करना।"[145] अजय प्रस्तुत उपन्यास में `ऊब` इस अस्तित्ववादी संकट से पलायन की भूमिका को स्वीकार करता है।

अजय के अलावा उपन्यास के दूसरे पात्रों में डॉ. मदन, जो एक अध्ययनशील व्यक्ति है, अपनी जिन्दगी में ऊबकाई की समस्या से पीडित हैं। "मैं चाहता हूँ कि, अब सैटिल हो जाऊँ, बैचलिर जिन्दगी से जी ऊबने लगा है।"[146] डॉ. मदन शादी करके अपनी जिन्दगी की ऊकताहट को दूर करना चाहते हैं।

`अपने-अपने अजनबी` में भी अज्ञेयजीने इस समस्या का चित्रण किया है। मरणासन्न, कैन्सरपीडित सेल्मा को देखकर योके को कठघरे में सर्वत्र मृत्यु की गंध आने लगती है, जिससे वह ऊबकाई महसूस करती है, "क्या कल्पना में ही इतना बल था कि, मुझे ऊबकाई-सी आने लगी ?"[147]

सेल्मा ने भी जवानी में इस समस्या का अनुभव किया है। बाढ़ के संकट के समय फोटोग्राफर की आत्महत्या उसकी आँखे खोल देती है। उसे आत्मग्लनि होती है। यही आत्मग्लानि उसके ऊबकाई का रूप धारण कर लेती है, "मानों फोटोग्राफर की यह उन्मत्त मुद्रा उसने फिर देखी, वह पागल चीख फिर सुनी, और फिर पानी की बुडबुडाहट और फिर वह एक स्वर घरघराहट, जिससे न जाने कितने दिन हो गये थे। एकाएक उसे ऊबकाई आने लगी।"[148] सेल्मा लाख कोशिश करती है कि, वह उस दृश्य को भूल जायें, उस सदमे से निकल जायें लेकिन व्यर्थ्य ! वह तो उसके दिमाग पर छाया रहता है। "वह जिधर मुडी, उधर भी वही दृश्य था -क्योंकि, वह उसकी आँखों के सामने नहीं, आँखों के भीतर था। उसकी ऊबकाई ने एकाएक मतली का रूप ले लिया और वह बेचैन-सी भीतर दौड गयी।"[149] सेल्मा की बेचैनी, ऊबकाई उसके संवेदनशीलता का प्रतीक है, जो उसमें इन्सानियत का परिवर्तन ला देता है। अज्ञेयजी के उपन्यास का यह एक ऐसा मोड है, जो उपन्यास को आगे बढ़ाता है।

निष्कर्ष :-

`अजय की डायरी` और `अपने-अपने अजनबी` में यह समस्या देखने को मिलती है। अमान्य बातों को किसी व्यक्ति पर लादने से `ऊबकाई` का निर्माण होता है। अजय की ऊबकाई इसका अच्छा उदाहरण है। निगम की आधुनिकता की बातें अजय को पसंद न होने पर भी वह उसपर लादता है। इस स्थिति में अजय ऊब जाता है। पी. जैसे भ्रष्टाचारी लोगों की भ्रष्टाचार की हरकतें भी अजय में ऊब का निर्माण करती हैं। कश्मीर ट्रीप की सुनहरी बातों का स्मरण, अमरीका का भौतिकवादी जीवन अजय में ऊबकाई का निर्माण करता है। डॉ. मदन भी अविवाहित जीवन के अकेलेपन के कारण ऊबकाई से ग्रस्त हैं। `अपने-अपने अजनबी` में फोटोग्राफर की आत्महत्या का सदमा सेल्मा में, एवं बन्द कठघरे में मृत्यु की कल्पना योके में इस समस्या को निर्माण कर देती है। संक्षेप में, अस्वीकृत बातों को लादने पर यहां के पात्र ऊबकाई की स्थिति का अनुभव करते हैं।

`लाल टीन की छत` में निर्मलजीने इस समस्या को इतना विस्तार रूप नहीं दिया कि जिसका

विश्लेषण किया जा सके। काया जैसी लडकी के `उस` उम्र में होनवाली मानसिक ऊथल-पुथल का वर्णन करना, उनका प्रमुख उद्देश्य रहा होगा।

9. संत्रास की समस्या :-

उक्त महत्त्वपूर्ण समस्याओं के साथ-साथ आलोच्य उपन्यासों में `संत्रास की समस्या` का विस्तार से तो नहीं, लेकिन संक्षेप में जिक्र किया गया है। `अजय की डायरी` में अजय दिल्ली और अमरीका के भौतिक एवं यांत्रिकता के वातावरण में संत्रास का अनुभव करता है। इसी भौतिकता ने उसके वैवाहिक जीवन को भी संत्रस्त बना दिया है।

`अपने-अपने अजनबी ` की सेल्मा को बाढ़ में अटकने पर संत्रास की पीडा सताती है। बर्फ से ढ़के काठघर में अटकने पर योके में संत्रास उभरता है। मृत्यु का डर उसमें संत्रास की भावना भर देता है। `लाल टीन की छत` में पहाडी गांव में बसी काया की घुटनशीलता, काया के सानिध्य में आये पात्रों की गैरहरकतों के कारण काया की संत्रस्तता बढ़ती है। काया की माँ, लामा से संत्रस्त है, नथवाली औरत के साथ रहनेवाला लडका पहाडी चाचा के परिवार की हरकतों से संत्रस्त होता है। यहाँ काया, काया की माँ, पहाडी नाम का लडका आदि पात्र संत्रास की पीडा से संत्रस्त है।

निष्कर्ष :-

आलोच्य उपन्यासों में अस्तित्व रक्षा की समस्या, अकेलेपन की समस्या, जीवन की निरर्थकता की समस्या, ईश्वरनिरीश्वर अर्थात् आस्तिक-नास्तिक की समस्या, स्वतंत्रता की समस्या, अलगाव की समस्या, अजनबीपन की समस्या, ऊबकाई की समस्या, संत्रास की समस्या आदि समस्याओं पर कम-अधिक मात्रा में सोचा गया है। अस्तित्ववाद के सूत्र एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं। एक सूत्र से दूसरा सूत्र उभरता है, इस स्थिति में आलोच्य उपन्यासों में अस्तित्ववादी सूत्रों का, प्रवृत्तियों का चिंतन करते समय, इन सूत्रों के कारण साठोत्तरी जनजीवन में उभरी समस्याओं पर सोचना अनिवार्य बनता है। सन साठ के बाद अस्तित्ववादी चिंतनधारा ने भारतीय साहित्य में पदार्पण किया। डॉ. देवराज, अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने अपने-अपने दृष्टिकोण के मुताबिक इस चिंतनधारा को अपने उपन्यास साहित्य में प्रवाहित किया। आलोच्य तीन उपन्यासों की समस्याओं में तादात्म्य है, फिर भी एकाध समस्या को एकाध उपन्यासकारने विस्तार से चित्रित किया है, तो एकाध उपन्यासकार ने इस

पर कम मात्रा में चिंतन किया है।

आज की स्थिति में यह समस्याएँ मानवी जीवन में अधिक मात्रा में दिखायी देती हैं। भौतिकी सुविधाएँ, औद्योगिक क्रान्ति, बढ़ती आत्मकेंद्रिता आदि के कारण आज का मनुष्य इन समस्याओं से अधिक पीडित दिखाई देता है। विशेषत: `अजय की डायरी` और `अपने-अपने अजनबी` में उपर्युक्त सारी समस्याओं के दर्शन होते हैं, परंतु `लाल टीन की छत` में यह समस्याएँ अधिक विस्तार नहीं पा सकी हैं। शायद युवावस्था के देहलीज पर कदम रखनेवाली लडकी काया के अंत:विश्व का मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से चित्रण यहाँ किया है। बाह्य विश्व पर अधिक सोचने की लेखक को कोई आवश्यकता महसूस नहीं हो रही है, इसीलिए उपर्युक्त समस्याओं का विस्तार करने की अपेक्षा उन्होंने संकेत से काम लिया है।

तीनों उपन्यासों के पात्र अकेलेपन से पीडित हैं। कोई परिवेश के कारण अकेला बन गया है तो कोई दूसरों द्वारा अकेला बना दिया है, कुछ लोग अपने अकेलेपन के लिए खुद जिम्मेदार हैं। इन लोगों को निराशावाद ने घेर लिया है, जिसके कारण उन्हें जीवन निरर्थक लगने लगता है। मृत्यु को सामने पाकर या फिर स्वार्थवश वे एक-दूसरे से अजनबीपन एवं अलगाव की भावना रखते हैं। वे जहाँ भी जाते हैं, अपने आपको वहाँ के परिवेश में जुटा नहीं पाते। परिणामस्वरूप उन्हें ऊबकाई की समस्या, संत्रास की समस्या का सामना करना पड़ता है। ईश्वर पर से भी उनका विश्वास उठता चला जाता है। यांत्रिकीकरण के कारण ये कुछ ज्यादह मात्रा में बुद्धीजीवी बनते चले जाते हैं। परिणामस्वरूप, स्वतंत्रता की प्रखर भावना उनमें जन्म लेने लगती है। इन सभी समस्याओं से गुजरते दौरान अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए भी ये पात्र संघर्षरत दिखायी देते हैं।

: संदर्भ-सूची :

1. डॉ. पारूकान्त देसाई - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास , सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1984, पृ. 12
2. पॉल रूबिचेक -अस्तित्ववाद पक्ष और विपक्ष, अनुवादक-डॉ. प्रभाकर माचवे, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, सं. 1973, पृ. प्रस्तावना से।
3. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल -साठोत्तरी हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, सं. 1997, पृ. 268
4. डॉ. ज्ञानराज गायकवाड - पाश्चात्य साहित्य, सिद्धान्त और विविधवाद, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्र. सं. 1994, पृ. 146
5. वही, वही, पृ. 146
6. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 31-32
7. वही, पृ. 42
8. वही, पृ. 120
9. वही, पृ. 121
10. वही, पृ. 123
11. वही, पृ. 98
12. वही, पृ. 194
13. डॉ. शुकदेव सिंह - प्रेमचन्दोत्तर कथासाहित्य में अस्तित्ववाद, अनुपम प्रकाशन, पटना, सं. 1982, पृ. 108
14. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 196
15. वही, पृ. 212
16. वही, पृ. 264
17. वही, पृ. 287-288
18. वही, पृ. 307
19. वही, पृ. 355
20. वही, पृ. 334
21. वही, पृ. 388
22. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 61

23. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 10

24. वही, पृ. 14-15

25. वही, पृ. 72

26. वही, पृ. 67

27. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्र. सं. 1973, पृ. 228

28. अज्ञेय -अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 87

29. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 93

30. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त- पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त , अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृ. 242

31. वही, पृ. 243

32. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 112-113

33. वही, पृ. 184

34. युवाचार्य महाप्रज्ञ - एकला चलो रे, तुलसी अध्ययन नीडम , जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान) चतुर्थ सं. 1988, पृ. 171

35. श्री. प्रियदर्शन - यही है जिन्दगी, श्री. विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट, मेहसाना, प्र. सं. 1987, पृ. 72

36. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 35

37. वही, पृ. 35

38. वही, पृ. 107

39. वही, पृ. 379

40. वही, पृ. 245

41. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सं. 1972, पृ. 66

42. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 324

43. डॉ. देवराज - साहित्य और संस्कृति, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, काशी, प्र. सं. 1958, पृ. 45

44. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 73

45. वही, पृ. 73

46. वही, पृ. 77

47. युवाचार्य महाप्रज्ञ - एकला चलो रे, तुलसी अध्ययन नीडम , जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान) चतुर्थ सं. 1988, पृ. 169

48. वेदप्रकाश अमिताभ- हिन्दी कहानी के सौ वर्ष, मधुबन प्रकाशन, द्वारिकापुरी, मथुरा (उ. प्र.) प्र. सं. 1987, पृ. 216

49. वही, पृ . 216

50. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 82

51. वही, पृ. 153

52. वही, पृ. 117

53. श्यामसुन्दर मिश्र- अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1984, पृ. 55

54. वही, पृ. 55

55. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 37

56. वही, पृ. 90

57. वही, पृ. 289

58. वही, पृ. 356

59. ज्ञानराज गायकवाड - पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्त और विविधवाद, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्र. सं. 1994, पृ. 149

60. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्र. सं. 1973, पृ. 216

61. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 37

62. वही, पृ. 73

63. वही, पृ. 73

64. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 1993, पृ. 271

65. वही, पृ. 272

66. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 48

67. डॉ. यादवराव बाबुराव धुमाल - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलानात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1997, पृ. 275

68. डॉ. ज्वालाप्रसाद खेतान- अज्ञेय चेतना के सीमान्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं. 1993, पृ. 94

69. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 195

70. वही, पृ. 204

71. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1984, पृ. 14

72. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 99

73. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1984, पृ. 14

74. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1984, पृ. 14

75. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 208

76. वही, पृ. 210

77. वही, पृ. 377

78. वही, पृ. 88

79. वही, पृ. 246

80. शुकदेव सिंह - प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद, अनुपम प्रकाशन, पटना, सं. 1982, पृ.179

81. डॉ. पारूकान्त देसाई - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, सुर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1984, पृ. 62

82. वही, पृ. 62

83. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 77

84. वही, पृ. 79

85. वही, पृ 79

86. अज्ञेय - आपुले आपणासी अनोळखी, मराठी अनुवादक- डॉ. पद्माकर जोशी, सुपर्ण प्रकाशन, पुणे, प्र. सं. 1987, पृ. 17

87. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 88

88. वही, पृ. 41

89. वही, पृ. 41

90. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1974, पृ. 206

91. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त - पाश्चातय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृ. 246

92. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1973, पृ. 85

93. H.J. Blakham - Six Existentialist Thinkers, Routledge & keganpaul LTD., Broadway house, London, pub-1967, page. 48

94. डॉ. शिवप्रसाद सिंह- आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1973, पृ. 72

95. वही, पृ. 66

96. वही, पृ. 94

97. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 47

98. वही, पृ. 305

99. वही, पृ. 305

100. वही, पृ. 307

101. वही, पृ. 336

102. वही, पृ. 160

103. वही, पृ. 327

104. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 36

105. वही, पृ. 87

106. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त - पाश्चातय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृ. 241

107. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 43

108. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1974, पृ. 206

109. वही, पृ. 205

110. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 47

111. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1973, पृ. 3

112. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 35

113. वही, पृ. 287

114. वही, पृ. 288

115. वही, पृ. 137

116. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1973, पृ. 108

117. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 36

118. वही, पृ. 37

119. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1974, पृ. 88

120. वही, पृ. 74

121. वही, पृ. 202

122. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, प्र. सं. 1981, पृ. 17

123. वही, पृ. 37

124. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 233

125. वही, पृ. 320

126. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद, प्र. सं. 1981, पृ. 36

127. वही, पृ. 18

128. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.20

129. डॉ. अतुलविर अरोडा - आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास पब्लिकेशन ब्युरो, पंजब युनिव्हर्सिटी, चण्डीगढ़, प्र. सं. 1974, पृ. 180

130. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 38

131. वही, पृ. 24

132. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 89

133. वही, पृ. 89

134. वही, पृ. 87

135. वही, पृ. 90

136. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1974, पृ. 52

137. वही, पृ. 69

138. वही, पृ. 116

139. वही, पृ. 146

140. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1973, पृ. 94

141. वही, पृ. 94

142. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 28

143. वही, पृ. 30

144. वही, पृ. 31

145. वही, पृ. 31

146. वही, पृ. 382

147. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 45

148. वही, पृ. 64

149. वही, पृ. 64

****